सहजानंद शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग 3

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

तृतीय भाग

लेखकः—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—
नरेन्द्रकुमार जैन 'मधुर'
साहित्य-सिद्धान्त शास्त्री

प्रकाशक —
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण]
१०००

१९६४

[न्यौछावर
७५ नये पैसे

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान , जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान , वे विराग यहँ राग वितान ॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान , अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान , बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन , मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान , फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम , विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम , आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम , मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम , 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

❀ अहिंसा परमो धर्म ❀

परमात्मप्रकाश प्रवचन

तृतीय भाग

अप्पा अप्पु जि पर परुजि परु अप्पा परु जि[illegible]
परुजि कमाइ वि अप्पु णवि णियमें पभणइ जोजि ॥६७॥

आत्मा आत्मा ही है, देहादिक परपदार्थ पर ही हैं। आत्मा पर नहीं होता और पर आत्मा नहीं होता—ऐसा योगीश्वर देव निश्चय कर कहते हैं। भैया! मोहके गलानेका उपाय यह भेदविज्ञान है। परपदार्थोंका स्वरूपास्तित्व दृष्टिमें आये तो वहां मोह नहीं रहता। जैसे सीप पड़ी है दूर और समझमें आ गया कि चांदी है तो रागी पुरुषोंको उससे मोह हो जाता है। उसके पानेका यत्न करेंगे और किसी प्रकारका यत्न करके यह मालूम हो जाय कि यह तो सीप है तो फिर कभी भी उसके प्रति मोह नहीं हो सकता। कांच पड़ा है, आंगनमें गोल मटोल छोटा सा और यह भ्रम हो जाय कि यह तो कोई अंगूठीमें जड़ाया जाने वाला नग है तो उसके प्रति मोह हो जायगा और जब यह मालूम हो जाय कि यह तो कांच है तो फिर मोह उससे होगा क्या? न होगा। सच्चा ज्ञान होगा तो मोह न होगा, उसमें परिणाम न जायगा। इसी प्रकार इन सबका बाह्यपदार्थोंके जब स्वरूपास्तित्वका भाव न हो और यह जाना जाय कि यह मेरा है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा हितू है, मात्र इनसे ही मेरी जिन्दगी है, इनके बिना तो मेरा अस्तित्व ही नहीं है, इतना भ्रम हो गया तो यह मोहवश हो गया और यदि सही ज्ञान हो जाय कि ये सब पर हैं, इनका अस्तित्व इनमें है, मेरा अस्तित्व मुझमें है, कोई पदार्थ स्वयंकी सीमाका उल्लंघन नहीं करता सब अपनी अपनी सीमामें ही स्थित हैं—ऐसा सत्य बोध हो जाय, दृढ़तासे निश्चय हो जाय तो कभी यह बुद्धि नहीं हो सकती कि यह मेरा है।

मोह की बलिहारी देखो चाहे बच्चा आपके कहनेमें न हो, आपसे विपरीत चलता हो, आपको कष्ट ही देता हो, फिर भी भीतरसे यह ममता नहीं छोड़ी जा पाती कि यह भिन्न जीव है, मेरा यह कुछ नहीं है। ऐसी भीतरमें बुद्धि नहीं हो पाती, कुछ नहीं मिलता है उनसे अपने को, जैसे बछड़ेसे गायको कुछ नहीं मिलता है। गाय भूखी है तो बछड़ा कहींसे घास लेकर गायके मुखमें दे देगा क्या? ऐसा तो नहीं है। गायका कुछ काम बछड़ेसे न होगा, बल्कि क्लेश ही होंगे। गाय ने गर्भमें क्लेश सहा और

जब बछड़ा पैदा होता है उस समय तो बड़ा ही कष्ट होता है। और बछड़ा कुछ बड़ा हो गया तो वह गाय अपने खानेमें भी मन नहीं लगाती, हौंड़-हौंड़ कर दरवाजे पर ही खड़ी रहती है। सारे क्लेश गाय भोगती है, बछड़ेके लिए, पर गायको बछड़ेसे लाभ कुछ नहीं होता। होता हो कुछ लाभ तो बतलावो, फिर भी गाय बछड़ेके लिए मरी जाती है, यही मेरा सर्वस्व है। इसी प्रकार यह मोह पैदा हो तो बच्चोंको, स्त्रीको, पोतोंको ही अपना सर्वस्व मानते हैं पर उनसे कुछ लाभ मिलता हो तो बतलावो।

भैया! ज्यादहसे ज्यादह आप यह कहेंगे कि बच्चे लोग हमें खिलाते हैं, हमारी भोजनकी खबर रखते हैं। सो भोजनकी खबर रखनेके दो कारण हैं। एक तो यह कि आपका उदय अच्छा है और चरित्र अच्छा है, कषाय भी मंद हैं और कुछ बच्चोंके हितकी बात भी बोल रहे हैं, पहिला कारण तो यह है, जो लोग आपकी पूछ किया करते हैं। और दूसरा कारण यह है कि उन बच्चोंको भी अपनी इज्जत रखना है। यदि वे बापकी दादाकी खबर न रखें और बुरी तरह फिरा करें तो इसमें उनकी भी तो इज्जत घटती है। लड़कोंकी पोजीशनपर भी तो धब्बा लगता है ना। तो अपनी इज्जत पोजीशन बनानेके लिए भी वे बाप और दादाकी खबर रखते हैं। आपका आत्मा उनका कुछ लगता हो इस कारण आपकी खबर रखते हों यह बात नहीं है। कोई भी आत्मा किसी दूसरेका कुछ नहीं लगता है। सब जीवोंका स्वरूप भिन्न भिन्न है। चतुष्टय न्यारा न्यारा है, किसीसे किसीको कोई लाभ नहीं है। यह बात तब श्रद्धामें बैठती है। जब पदार्थोंके स्वरूपास्तित्त्वका ज्ञान हो। उसी भेदविज्ञानकी बातको इस दोहामें कह रहे हैं।

यह शुद्ध आत्मा अर्थात् केवल अपने अस्तित्त्वसे जितना सत् है, जो कुछ है वह ज्ञानस्वरूपी आत्मा केवल ज्ञानादिक स्वभाव वाला है। आत्मामें अचिन्त्यशक्ति होती है। जो कुछ भी प्रताप है, चमत्कार है, आश्चर्यजनक घटनाएं हैं वे सब आत्माके चमत्कार हैं। विज्ञानके युगमें रेडियो, राकेट, वायुयान, तार बेतार ये सब जो अद्भूत बातें हैं वे ज्ञान के ही चमत्कार हैं और जिनके सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञानके बलसे आत्मतत्त्वकी उपासना करके जो आत्मा संयत होता है उनके ज्ञानका तो अपूर्व चमत्कार है। सर्वलोकको जान लेते हैं। तो यह शुद्ध आत्मा केवल आत्मा है। यह खालिस आत्मा अर्थात् आत्माके सिवाय और कोई चीज न निरखें, न शरीर निरखें, न कर्म देखें, न रागद्वेष विकार देखें, ज्ञानके ही स्वरूपसे ज्ञानमें जो हो केवल उस ही स्वरूपको देखें तो वह शुद्ध आत्मा

कहलाता है।

भैया! वर्तमानमें भले ही संसार अवस्था है। कर्म नोकर्मका बन्ध है, फिर भी आत्माकी मात्र सत्ता क्या है? इसको ज्ञानसे निरखा जा सकता है। तो यह शुद्ध आत्मा केवल ज्ञानादिक स्वभाव वाला है। वह शुद्ध आत्मस्वरूप है और जो कर्मादिक भाव हैं वे पर ही हैं। मैं तो ज्ञानमात्र हूं? और रागद्वेष विषय कषाय ये सब पर ही हैं—ऐसा यह भेदविज्ञान करते हैं। घर, मकान ये पर हैं, इनको समझानेके लिए आचार्योंकी चेष्टा नहीं होती है। कभी कह दिया तो साधारणरूपसे आचार्यदेवने तो अपने वास्तविक स्वरूपको और वास्तविक स्वरूपसे भिन्न जो विकार हैं उनको भिन्न-भिन्न करके बताया है। तो यह शुद्ध आत्मा कषाय स्वभाव वाला नहीं है, पर रूप नहीं है और कषाय भाव पर शुद्धात्मरूप नहीं है। पर पर ही है, निज-निज ही है। "निजको निज परको पर जान।" यह बात इस दोहेमें कही जा रही है।

जीव अपने स्वभावको छोड़कर विकारजड़ताको ग्रहण करे तो वह परजड़ अपनी जड़ताको छोड़कर ज्ञानरूप नहीं हो जाता। ज्ञान, ज्ञान ही है, विकार विकार ही है। ज्ञान और विकारका अन्तर जानों। जैसे भगोनेमें ५ सेर पानीमें १ तोला रंग डाल दिया, सारे पानीमें रंग हो गया तिसपर भी पानीका जो सत् है पानीके अस्तित्वके कारण, जैसा पानी होता है? वह पानी पानी ही है, वह रंग रंग ही है, वह पानी नहीं बन गया। बहुत मुश्किलसे उस रंगे हुए पानीमें यह पहिचान बैठ सकेगी कि पानी पानी ही है और रंग, रंग ही है। रंग पानी नहीं बना और पानी रंग नहीं बना। भींतमें अपनको कुछ जल्दी समझमें आ जायगा। भींतपर पीला रंग पुता है, खूब पतला फैलकर पुता है ना? इसमें भींत-भींत ही है और रंग-रंग ही है। भींत रंग नहीं हो गया, और रंग भींत नहीं हो गई। यह बात कुछ जल्दी समझमें आ रही है। इसी तरह पानीकी भी बात है। खैर, यह भी कुछ समझमें आ रहा है। और अन्दरकी बात देखो, ज्ञान और विकार दोनोंका उदय चल रहा है तिसपर भी ज्ञान-ज्ञान ही है और विकार-विकार ही है। ज्ञान विकाररूप नहीं हो जाता और विकार ज्ञानरूप नहीं हो जाता। इसी प्रकार परमयोगी पुरुष भेदभावनाकी बात बतलाते हैं। अब इस भेदभावनाके बल द्वारा परभावोंसे हटकर आत्मस्वभाव तक आये, इससे यह पहिचानों कि इस आत्माके लिए उपादेय जो अनन्तसुख है, अनन्तज्ञान है, शुद्ध चरमविकास है, वह आत्मासे अभिन्न है, विकारोंसे भिन्न है, ऐसा जो यह शुद्ध आत्मा है वही हम आप सबको उपादेय है।

भय्या! भेदविज्ञानका बड़ा महात्म्य है। शांति, कर्मनिर्जरा भेदविज्ञान से ही प्राप्त होती है। प्रभुका भी वास्तविक भक्त वही है जो प्रभुके उपदेश हुए मार्ग पर कदम रखे। उनका उपदेश है ज्ञान और वैराग्य। लौकिक जनोंकी दृष्टिमें चाहे वह कुछ भी मूल्य न रखता हो, किन्तु वस्तुस्वरूपका सम्यक् ज्ञानी पुरुष अपनी शांतिको पानेमें पूर्ण समर्थ हैं। जीवका लक्ष्य तो शांति और आनन्दका है। और उस लक्ष्यकी पूर्ति रत्नत्रयमें है। झूठे, मायामयी, विनाशीक इन परचेतनसत्वोंसे कुछ मायामय बातें सुन लेनेमें हित नहीं है, लोकका जीव कोई मुझे जाने अथवा न जाने, जान जाये कोई तो इससे मेरा उद्धार नहीं हो जाता, न जान पाये कोई तो इससे मेरा पतन नहीं हो जाता। जैसे यात्राके लिए साहसके साथ अपने पैरों से ही तो चलकर पहुंचते हैं ना? इसी तरह इस चरमविकास पूर्णशुद्ध परिणमनमें अपने ही परिणमन द्वारा अपने ही पुरुषार्थ से बढ़े चलो, मंजिल मिल जायगी। ऐसा होने के लिए शास्त्रोंका विशेष अभ्यास चाहिए।

दूसरी बात यह आवश्यक है कि भगवान् की भक्ति चाहिए। जैसे शास्त्रोंके अभ्यास बिना अपने आपके विकासको नहीं प्राप्त हो सकते, इसी प्रकार भगवान्की भक्ति बिना भी अपना विकास नहीं हो सकता। अरहँत सिद्ध भगवान् हैं और निजका जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है वह निजका परमार्थ भगवान् है। जब तक इस प्रभुकी महिमा पर, इसके गुणों पर न आ जायें तब तक मुक्तिके मार्गमें उत्साह नहीं होता है, छोड़ नहीं सकते। इस कारण आत्महित चाहने वाले पुरुषों को जिनभक्ति भी आवश्यक है।

तीसरी बात यह है कि सदा श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा करना आवश्यक है। या तो अत्यन्त एकांत हो या सत्संग हो। सो अब आजकल अत्यन्त एकान्तका तो अवसर कठिन हो गया है तो सत्संगका अपना वातावरण रखना चाहिए। गृहस्थ हो तो क्या है? यहां भी तो अपनी सज्जन गोष्ठी बनाई जा सकती है, पर गोष्ठीकी सफलता के लिए नियत समयपर उपस्थित होना आवश्यक हो जाता है। ऐसी गोष्ठी हो जिससे धर्मपालनके लिए उत्साह बना रहे, अपने ज्ञानकी वृत्तिका अवसर बना रहे। यह उन्नतिका उपाय कहा जा रहा है।

चौथी व पांचवी यह बात होनी चाहिए कि अपने मुखसे गुणी पुरुषोंका गुणगान करते रहें और किसी दूसरेके दोष न बोला करें। यदि गुणियोंका गुण अपने मुखसे नहीं बखान सकते तो उसका कारण समझिये कि अपने पर्यायका उसे अहँकार है। जो पर्यायका अहँकारी है वह दूसरोंकी भी प्रशंसा नहीं सुन सकता। फिर वह दूसरों का गुणगान गा ही कैसे सकेगा?

भय्या ! इस असार संसारमें किस बातका मान रखना ? मानी पुरुष आखिर नीचा ही देखते हैं क्योंकि मानी पुरुषों को चाहिए सदा मान ही मान, पर ऐसा कैसे हो सकता है ? कोई तुम्हारा रिश्तेदार इस जगतमें नहीं है या कोई पालक रक्षक इस जगतमें नहीं है। यह तो अपने परिणामोंसे ही अपनी रक्षा की जा सकती है, फिर दूसरों के दोष मुखसे कह देने में लाभ क्या मिलता है ? न तो कोई आजीविकामें वृद्धि और न कोई उद्धार की बात है दूसरोंकी निन्दा करने में। इसलिए सज्जन पुरुषोंका हमेशा गुणगान करना चाहिए, और दूसरोंके दोष कहनेमें मौन रखना चाहिए। यह बिल्कुल व्यर्थ की बुरी आदत है कि जो बैठे-बैठे दूसरोंकी आलोचना कर रहे हैं अमुक ऐसे हैं, अमुक-अमुक हैं। तो ५वीं बात हुई अपने कल्याणके लिए कि दूसरों के दोष मुख से न कहो। कोई पीट तो नहीं रहा कि यह आपकी ड्यूटी बन जाय कि तुम्हें निन्दा और दोष बखानना ही हो, उसके बिना तुम्हारा काम ही न चलेगा, ऐसी बात नहीं है। न कोई आफत तुम्हारे ऊपर आ रही है, किसी प्रकारके लाभ की सम्भावना नहीं है, फिर भी मोहका ऐसा प्रचंड वेग होता है कि वे मोह नहीं छुड़ा सकते। पर्यायपर गौरव रखते हैं, अपनेको सबसे ऊँचा बताना चाहते हैं और ऊँचा बतानेके प्रसंगमें दूसरोंकी निन्दा करना स्वाभाविक काम बन जाता है। सो किसीके दोष कहनेमें मौन रखो। जब अपने उपयोगमें किसीके दोष आ जायेंगे याने खुदका हृदय मलिन होगा तो दूसरों के दोष कहे जा सकते हैं।

छटवीं बात है कि सबसे प्रिय और हितकारी वचन बोलो। मनमें कुछ और है और वचनोंमें और कुछ कह रहे। ऐसा सोचने से तो खुद पर ही पीड़ा बीतेगी। इस कारण दोषके कहनेमें पूर्ण मौन रखना चाहिए और सबसे प्रिय हित वचन बोलना चाहिए। हितकारी भी बोलो, प्रिय भी बोलो, थोड़ा भी बोलो, उससे अपना उत्थान है और लोकमें भी कोई दुःखोंकी बाधा नहीं आ सकती।

सातवीं बात जिसके लिए ये ६ बातें की जा रही हैं वह हैं आत्मतत्त्व की भावना करना। मैं अपनी प्रगतिके लिए यह काम अति आवश्यक है, करें तो नियमसे प्रगति होगी। अब इस ही शुद्ध आत्माके सम्बन्धमें यह बतलाते हैं कि शुद्ध निश्चयसे यह आत्मा न अपना जन्म करता है और न मरण करता है। जैसे कोई मुसाफिर एक गाड़ीसे दूसरी गाड़ीमें गया, एक डिब्बे से उतरकर दूसरे डिब्बेमें गया तो कहीं उस मुसाफिर के दो टूक नहीं हो गये। वह तो वही का वही है। केवल स्थान बदलता है। इसी प्रकार यह जीव मनुष्यसे देव बन जाय, देवसे मनुष्य बन जाय तो भी

वास्तवमें इस आत्माने न तो किसीकी उत्पत्ति की है और न अपना मरण किया है, वह तो वही का वही है। छोड़कर चला गया तो लोगोंने उसका नाम मरण रखा। और जो आ गया उसीका नाम हुआ उत्पत्ति। पर- परमार्थसे आत्माकी न उत्पत्ति है और न मरण है। इसी प्रकार इस आत्मा का न बन्ध है और न मोक्ष है। यह तो आकाशकी तरह निर्लेप है। उसका बन्ध कहां है? खुद ही कल्पना करके अपने अज्ञानसे बंधा हुआ है। न बंध करता है यह आत्मा और मोक्ष करता है, इस बातको इस दोहे में बतला रहे हैं :—

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवर एउं भणेइ ॥६८॥

हे योगी पुरुष! परमार्थसे तो यह जीव न तो उत्पन्न होता है और न मरता है फिर बंध और मोक्षको तो करेगा क्या? अर्थात् शुद्धनिश्चय- नय से जीव बंधसे व मोक्षसे रहित है, ऐसा जिनेन्द्र देवका कहना है। जब यह मुझमें शुद्ध आत्मतत्त्व अनुभूत नहीं होता है तब शुभ और अशुभ उपयोगकी परिणति रहती है और जीवन मरण शुभ अशुभ पुण्य पाप बंधों को करता है पर शुद्ध आत्माका अनुभव हो जाने पर यह जीव शुद्धोपयोग को प्राप्तकर मोक्षको प्राप्त कर लेता है तो भी शुद्ध परमपरिणामिक भावकी दृष्टिसे, शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे यह आत्मा कुछ नहीं करता। शुद्ध पारिणामिक भाव उसे कहते हैं कि जिस शक्तिके परिणमन विभिन्न भी हो रहे हों पर सर्व शक्ति की आधारभूत जो एक शक्ति है वह शक्ति परमपारिणामिक भाव कहलाती है। उस भावको ग्रहण करने वाले शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे न आत्मा जन्म करता है, न मरण करता है, न बंध करता है और न मोक्ष करता है वह तो शुद्धज्ञानस्वरूप शाश्वत विराजमान रहता है, ऐसे ही इस परमात्म- तत्त्वके बारेमें यहां विचार किया जा रहा है।

जैसे दर्पणके सामने कोई लाल पीली चीज रख दी जाय तो दर्पणमें लाल पीला परिणमन हो जाता है। यह तो बतलावो कि दर्पण अपने रससे, अपने स्वभावसे अपने सत्त्वके कारण क्या लाल पीला बन जाता है? क्या ऐसा लाल पीला होना दर्पणका निजी काम है? नहीं। वह समस्त उपादान के सान्निध्यसे लाल पीला परिणम गया है। इसी प्रकार यह आत्मा जब अपने शुद्ध निजस्वरूप सत्तामात्र भावोंका अनुभव नहीं करता है, तब अशुद्धो- पयोगरूप परिणम-परिणम कर जीवन मरण शुभ अशुभ बंधोंको करता है और जब यह अपने शुद्धस्वरूपकी खबर रखता है, अनुभव करता है तब शुद्धोपयोगसे परिणम कर मोक्षको करता है। तो भी शुद्ध पारिणामिक

परमभाव के ग्रहण करने वाले निश्चयनयसे अथवा शुद्धद्रव्यार्थिकनय से बंध, मोक्ष, जीवन, मरण किन्हीं भी अवस्थावोंको नहीं करता है।

भैया ! सामने ही यहीं देख लें, इस चौकीपर हाथकी छाया पड़ रही है तो क्या इस छायारूप परिणमन को यह चौकी अपनी सत्ताके कारण कर रही है ? अपने स्वभावसे कर रही है ? नहीं। यह तो हाथके आने पर इसमें परिणमन हो गया। तो निश्चयसे देखो कि चौकीने छायारूप परिणमन नहीं किया और जब निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध वर्तमान अवस्था की दृष्टिसे देखा तो द्रव्य छायारूप परिणम गया।

यहां कोई शिष्य पूछता है कि यदि द्रव्य शुद्धद्रव्याथार्थिकनयसे, शुद्ध निश्चयनयसे यह मोक्ष को नहीं करता है तो इसका अर्थ यह है कि शुद्ध निश्चयनयसे मोक्ष है ही नहीं। तो फिर मोक्षके लिए अनुष्ठान करना, व्रत, तप, संयम आदि करना ये व्यर्थ हो जायेंगे। शंकाके उत्तरमें परिहार करते हैं कि भाई मोक्ष होता है वह बंधपूर्वक छुटकारा होगा, इसका अर्थ यह है कि पहिले बंधा था, अब छूट गया। तो मोक्ष होता है बंधपूर्वक और शुद्ध-निश्चयनयसे बंध है नहीं तो इस कारणसे बंधका प्रतिपक्षभूत मोक्ष भी है वह भी शुद्ध निश्चयनयसे नहीं है। यदि शुद्धनिश्चयनयसे बंध हो जाय तो फिर सदा ही बंध रहना चाहिए। शुद्धनिश्चयनयसे बंध हो तो बंध कभी नहीं छूट सकता। जैसे शुद्धनिश्चयनय से जीवमें ज्ञान है तो कभी नहीं छूट सकता। इसी तरह बंध हो जाय तो बंध भी कभी छूट नहीं सकता। सदा ही बंध रहा करेगा।

एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि जैसे कोई एक पुरुष बेड़ियोंसे बँधा हुआ ठहरा रहता है और दूसरा कोई पुरुष बँधनरहित ठहरा रहता है तो जिसके बेड़ी पड़ी है उसके बेड़ी मिट जाने पर कहा जायगा कि तेरे बंधका अभाव हो गया है याने तेरा छुटकारा हो गया है। जो बंध था वह नहीं है और जो बेड़ीसे बँधा ही न था, उससे कहो कि तू बेड़ीसे छूट गया है या कोई जेल गया ही नहीं और उससे कहा जाय कि आप जेल से छूट गये हैं तो वह बुरा मानेगा ? क्यों भाई छूटनेकी ही तो बात कही है, मुक्तिकी ही तो बात बताते है, बुरा क्यों मान रहे हो ? बुरा यों मान रहे हैं कि छुटकारेकी बात कहनेमें भीतरमें बंधोंकी बात आ जाती है, जेलसे छूटनेकी बात कहनेमें जेलमें था की बात आ जाती है। इसलिए उसको सह नहीं सकता वह पुरुष, इसी तरह इस जीवके यदि बंधन न होता तो इसके छूटनेकी बात भी नहीं कही जाती, पर शुद्धनिश्चयनयसे यदि छूटनेकी बात कही जाती है तो शुद्ध

निश्चयनयसे बंधनकी बात आ जाती है। और स्वभावमें यदि यह बंधन है तो कभी छूटता नहीं। सो इसका बंधन कभी भी नहीं छूट सकता है। बंध भी व्यवहारनयसे है और मुक्ति भी व्यवहारनयसे है। शुद्धनिश्चयनयसे तो न जीवमें बंध है, न जीवका मोक्ष है, अशुद्ध नयमें ही बंध है। इसलिए बंध के नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिए। इस दोहे में उपादेय चीज क्या बताई कि वीतराग निर्विकल्प समाधिमें लीन मुक्तजीवोंके सदृश्य जो निज-शुद्धआत्मा है वह ही उपादेय है। अब यह कहते हैं कि निश्चयनयसे जीव की न तो उत्पत्ति है, न बुढ़ापा है, न मरण है, न रोग है, न लिङ्ग है, न रूप है।

अत्थिण उब्भउ जरमरणुरोयवि लिंगवि वरण।
णियमि अप्पु वियाणि तुहुं जीवहँ एक्कवि सरण ॥६१॥

यह बहुत प्राचीन भाषा है। लगभग १ हजार वर्ष पहिले जो भाषा बोली जाती थी उस ही भाषामें ये दोहे रचे गए हैं। जिसके जन्म नहीं है मरण नहीं आदि बताकर यह जीवका स्वरूपास्तित्व देखा जा रहा है। पदार्थ अपने स्वभावसे मात्र अपने रूप हैं। इनकी उत्पत्ति नहीं होती। यह तो अनादि सिद्ध चला आ रहा है। इसके बुढ़ापा भी नहीं होता। जो आत्मा अमूर्त है, ज्ञानमात्र है उसको ज्योतिस्वरूप चैतन्यतत्त्व बुढ़ापा कहां है। बुढ़ापा तो शरीरमें होता है। यदि कोई बूढ़ा पुरुष अपने ज्ञानबल से अपने शुद्धज्ञानभावको ही देखे तो उसको वह बुढ़ापा ही कुछ नहीं है और आत्माका मरण भी नहीं है। जो सत् है वह कहां जाय? जैसे जीवका मरण नहीं है इसी प्रकार पुद्गलका भी मरण नहीं है। शरीरसे जीव अलग हो गया तो वह शरीर किसी न किसी अवस्थाको लिए हुए ही रहेगा। कोई चीज सड़ जाय, जल जाय, तो वह भस्म बन गई। भस्मरूपमें उड़ गई परमाणु परमाणु भी खिर जायें तो भी द्रव्य कभी नहीं मिटता। इस जीवके मरण भी नहीं है, इस जीवमें रोग भी नहीं है। फोड़ा फुन्सी इस अमूर्त आत्मामें कहांसे हो जायेंगे? यह तो रूपवान् चीज है। सो रूपी पदार्थोंमें ही होगा। ममताका सम्बन्ध बना रखा है इन जीवोंने, इसलिए शरीरके कोई वेदना होकर भी ये अपने को उस वेदनामें आत्मीयत्व मानते हैं, किन्तु ज्ञानी जीवके वेदनामें उपयोगबुद्धि नहीं, है। वह तो निजी शुद्धचैतन्य स्वरूपको तकता है, इस कारण वहां रोग नहीं है।

पुरुषलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग ये लिङ्ग भी इस जीवके नहीं हैं। ये लिङ्ग पौद्गलिक हैं, शरीरके नहीं हैं। यह आत्मा तो एक ज्ञान-ज्योतिमात्र है। शरीरमें रहने वाला आत्मा अपनी कल्पनामें द्रव्य जैसा

विश्वास करता है, पर वस्तुतः आत्मा तो केवल चैतन्यस्वरूप है। वह न पुरुष है। न स्त्री है, न नपुंसक है।

इस जीवके वर्ण भी नहीं हैं। आत्मा न काला है, न गोरा है, किसी भी रूपमें नहीं है, वह तो एक चैतन्यसत् है। गोरे वर्ण वाले शरीरमें रहने वाला आत्मा यदि क्रोधी हुआ, मायाचारी हुआ, विश्वासघाती हुआ, अन्य किसी भी प्रकारके उपद्रव वाला हुआ तो लोग कहते हैं कि यह काले हृदय का है। इसका आत्मा काला है। तो ऐसी बुरी परिणति करके भी आत्मा काला नहीं होता, पर जैसा इसका शरीर गोरा है, साफ है, वैसा अंतरङ्ग साफ नहीं है इसलिए उसे काला कह दिया है। जीवके किसी भी प्रकारका वर्ण नहीं है।

इस जीवमें किसी प्रकारकी संज्ञा भी नहीं है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञायें भी कोई इस जीवके नहीं हैं और न संज्ञा कहिए, नाम भी जीवका कुछ नहीं है। आपके जीवका कोई नाम है क्या? अन्तरमें देखो। जो मात्र ज्ञानस्वरूप है, चित् प्रतिभासरूप है। उस आत्मा को बतावो कि उसका कोई नाम है? अन्तरमें देखो इस चैतन्यसत्का कोई नाम नहीं है। नाम कैसे धरा जाय? जैसे गेहूंके दाने सब एकसे हैं तो उन दानोंका नाम कैसे धरा जाय? जैसे यहां मनुष्योंके नाम रख दिये जाते हैं। गेहूंके दानोंमें तो फिर भी फर्क रहेगा पर यहां आत्मा आत्मामें रंच भी फर्क नहीं है। जब सब आत्मा एक प्रकार हैं तो फिर नाम कैसे रखा जा सकता है? नाम तो छटनीके लिए होता है कि बहुतसे पदार्थोंमें भी किसी एक पदार्थ को न्यारा करना है, बुलाना है तो नाम रखा जाता है, पर जो सब एकसे हैं उनमें नाम कैसे रखा जाय और रख भी दिया तो वह नाम सब जीवोंका हो गया तो फिर नाम रखनेसे फायदा क्या है? तो इस जीवके कोई संज्ञा नहीं है। यह शुद्धनिश्चयनयसे कहा जा रहा है।

अच्छा भैया! बतावो, वास्तवमें यह अंगुली टेढ़ी है कि सीधी है? आप कहेंगे कि सीधी है। जब हम टेढ़ी कर लें तो आप कहेंगे कि अंगुली टेढ़ी है। बच्चा पैदा होता है तो सीधी अंगुली लाकर नहीं पैदा होता है, वह टेढ़ी अंगुली लाकर ही पैदा होता है। फिर उसको जबरदस्ती सिखाते हैं तो उसकी अंगुली सीधी होती है। तो क्या कहा जाय कि अंगुली टेढ़ी है कि सीधी है? सीधी कहेंगे तो टेढ़ी करके टेढ़ी बता देंगे। टेढ़ी कहें तो सीधी करके बतादेंगे। पर वास्तवमें अंगुली न टेढ़ी है, न सीधी है। अंगुली तो अंगुली ही है। वह सब दशावोंमें रहते हुए भी एकस्वरूप है। इस प्रकार ये सब बातें जो निषेधरूपमें इस दोहे में कही हैं कि न मेरा जन्म है, न

मरण न है, न मुझमें दोष है। ये सब बातें व्यवहारनयसे हैं। व्यवहारनयसे के मायने झूठी नहीं किन्तु निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धसे हैं। ये विभिन्न बातें क्यों हो गई कि भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्मोंके उदय हैं। ये कर्म भिन्न-भिन्न प्रकारके क्यों हो गये कि नाना प्रकारके क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक विभिन्न परिणामोंसे ये कर्म उपार्जित किए जाते हैं। उन कर्मोंके उदयसे होने वाले जन्ममरणादिक इस जीवके शुद्ध निश्चयनयसे नहीं हैं।

भैया! हम अपनेको कैसा मानें कि आकुलताएँ न उत्पन्न हों और कैसा मान लें कि हममें आकुलताएँ ही उत्पन्न हों। अपने को द्वैतरूप मान लेना, किसी दूसरी चीजमें पड़ा हूं, फंसा हूं और दूसरी वस्तुके निमित्त से इसमें जो विभाव परिणमन होता है उनको भी मान लेना कि यह मैं हूं, तो इस मान्यताके परिणाममें यह जीव अशुद्ध ही रहेगा। अशुद्ध रहते हुए भी शुद्धता को देखें तो कभी अशुद्धता मिट जायगी। अशुद्ध अवस्थामें भी शुद्ध देखा जा सकता है। जैसे हम अंधेरे में बैठे हुए भी समस्त उजेलेकी चीजोंको देख लेते हैं, इसी प्रकार अशुद्धअवस्थामें भी हम आपको उस शुद्ध आत्माका ज्ञान हो सकता है। तो शुद्धनिश्चयनयसे इस जीवमें कोई दंद फंद नहीं है। क्यों नहीं है कि केवल ज्ञानादिक अनन्तनयों कर देखें तो यह आत्मा अनादिकालसे चले आये हुए जन्म-मरण, कर्म आदिकसे पृथक् ही है। इस स्वभावमें प्रीति करेंगे तो शुद्ध परिणमन ही चलेगा अर्थात् द्रव्य स्वभावमें प्रीति रखेंगे तो हमारा शुद्ध विकास होता चला जायगा। इस कारण स्वच्छन्द होकर जैसा मन चले चलने दो, जैसी इच्छा करे, जैसा भाव करे सो होने दो। ऐसी प्रवृत्तिमें सार कुछ नहीं है। सार तो अपने आपमें बसे हुए उस परमात्माके दर्शनमें ही है।

इस दोहे से यह शिक्षा लेना है कि ये जन्म मरण, सुख दुःख ये सब हेय हैं क्योंकि उपादेयरूप अनन्तसुखोंका अविनाभावी जो शुद्धज्ञानमय चीज है उससे ये सब भिन्न हैं। मेरी शरण कौन हो सकता है? जो सदा मेरे पास हो और ध्रुव रहता हो। ध्रुव तो पुद्गल परमाणु भी है पर वह मेरे पास सदा नहीं है। तो जो मेरे निकट हो या मैं ही खुद और ध्रुव होऊं ऐसा तत्त्व ही उपादेय है, बाकी अन्य सब भाव हेय ही होते हैं। यह शिक्षा हमें इस दोहेसे लेना चाहिए।

जीवका हित करने वाला भाव अहिंसाभाव है। हिंसाका भाव न होना यह जीवमें एकमात्र हितकर भाव है। अहिंसाको एक जगह समन्तभद्र स्वामीने कहा है कि अहिंसाभाव ही परमब्रह्म है। उस अहिंसाका अर्थ क्या

है ? हिंसा न होना । यह जीव किसकी हिंसा कर सकता है ? यह एक ज्ञान मात्र अनन्तगुणनिधान अपने ही स्वरूपसे अपना अस्तित्व रखने वाला यह जीव अपने प्रदेशोंसे बाहर अन्यत्र क्या कर सकता है ? यह जीव एक ज्ञानज्योतिमात्र है, किन्तु भ्रमदृष्टिसे व्यवहारदृष्टिसे बाहरमें कर्तृत्व मानता है। और निश्चयदृष्टिसे शांति और आनन्दमें मग्न रहनेका इस जीवमें परिणाम होता है। यह जीव अपने आपसे बाहर कुछ नहीं कर सकता है। इतना ठीक निर्णय कर लेना ही धर्मका पालन है। कोई भी काम करें, विधिपूर्वक किया जाय तो उसका फल सामने आता है। धन कमानेका भी काम करो, यदि विधिसहित कायदे सिर किया जाय तो उसका फल सामने आता है। सामाजिक काम किया जाय तो विधिसहित किया जाय तो उसका फल सामने आता है। इसी प्रकार धर्मका काम किया जाय तो विधिसहित किया जाय तो उसका फल सामने आता है।

धर्मकी विधियोंमें सबसे पहिली विधि यह है कि अपने आपको जाने कि यह भावात्मक मैं चेतन अपने प्रदेशोंसे बाहर कर क्या सकता हूं ? इसका निर्णय कर लेना परमपुरुषार्थ है, धर्मका मौलिक पालन है। धर्मज्ञान साध्य है, धन साध्य नहीं है। धर्मके पालनमें यह अटक नहीं है कि हम गरीब हैं तो धर्म सधता ही नहीं। उसका पालन कैसे करें ? अपने आपका निर्णय करलो कि यह मैं आत्मा केवल अपने आपको कर सकता हूं। किसी रूप भी करूँ, केवल अपने द्वारा ही किया करता हूं और उस करनेका फल केवल मुझमें होता है। मेरा सर्वस्व मेरेसे बाहर कहीं कुछ नहीं है। मैं अज्ञानमें होऊँ तो अपनी ही हिंसा करता हूं, कषायमें होऊँ तो अपनी ही हिंसा करता हूं। निमित्तनैमित्तिक भावोंसे, उसकी चेष्टाके निमित्तसे दूसरे जीवोंका घात हो जाय तो उसके अपने दुष्परिणामके कारण हिंसा लगी है। सबसे अधिक हिंसा तो यह है कि अपने ज्ञान और आनन्दका निधान जो यह प्रभुस्वरूप है उसको दबाये हुए हो। अपने निज नाथपर अन्याय कर रहे हो, शांतिसे परे हो रहे हो, यही सबसे बड़ा आघात अपनी परिणतिसे अपने आप पर कर रहे हो। यह है अनन्तानुबंधी क्रोध। चाहे लोगोंको देखनेमें यह आये कि यह तो बड़ी शांतिसे रहता है, किसीको गाली भी नहीं देता है। ठीक है किन्तु यदि अपने प्रभुका प्रसाद नहीं पाया, इस ज्ञान-स्वभावी निजसहजभाव का परिचय नहीं लिया तो वह अपने प्रभु पर अत्यन्त अन्याय करता है और अनन्तानुबंधी क्रोध करता है।

भय्या ! अपन किस बातमें फूले फिरे ? धनका समागम जुट गया तो इससे कुछ अपने कल्याणकी बात हासिल नहीं होती। मरना पड़ेगा,

सब कुछ छोड़कर जाना होगा। इन मोही पुरुषोंमें कुछ जानने की बात कर लिया तो इससे पूरा न पड़ेगा। ये मोही जन भी विघट जायेंगे और यह मैं भी विघट जाऊँगा। इन मोही जनोंसे आत्माका पूरा न पड़ेगा। जगतमें कौनसा ऐसा सारभूत काम है कि जिस कामसे इस मुझ आत्माका पूरा पड़ जायगा? मोहके उदयकी विचित्र महिमा है। जब तक धन जनका समागम रहता है तब तक उस समागमके प्रति यह नहीं सोच सकते कि ये समागम विनाशीक है, बिल्कुल भिन्न है, इससे मेरा हित नहीं है किन्तु जब समागम विघट जाता है, इष्ट वियोग हो जाता है तो कुछ समय बाद इसे यह विदित होता है कि मेरा कुछ भी तो अधिकार न था, कोई सम्बंध न था। इष्टके वियोग होनेके बाद जो बुद्धि आया करती है ऐसी बुद्धि इष्टके समागमके रहते हुए भी रहे तो उससे जीवके कल्याणमें आनेके लिए संदेह नहीं हो सकता है। हम आप जीव प्रतिक्षण अपने आपके स्वरूपको भूल कर अपनी हिंसा करते चले जा रहे हैं। तप और बातों की व्यवस्था तो बनाते फिरते हैं, किन्तु निजकी अपनी व्यवस्था बनाने की ओर दृष्टि ही नहीं है।

ये सब दृश्यमान जीवलोक असमानजातीय पर्यायें कहलाती हैं, अर्थात् चेतन और अचेतन इन दोनोंके सम्बंधमें ये पर्यायें प्रकट होती हैं। दिखने वाले ये पदार्थ तो समानजातीय हैं। पुद्गल, पुद्गल, एकसी जाति के मिल गए और उसका यह रूप बन गया किन्तु यह तो चेतन और अचेतन के मेलसे यह व्यवहारमें आने वाली पर्यायें बन गई हैं। सब तत्त्व विघट जायेंगे, चेतन अलग हो जायेंगे, ये स्कंध अलग हो जायेंगे। ऐसी ही सब दृश्यमान पदार्थोंकी स्थिति है।

पर्यायमूढ़ पुरुष, मोही जीव जिनमें विश्वास जमाये हुवे हैं उससे बढ़कर भयंकर दुःख देने वाला साधन और कोई दूसरा नहीं है। यह मोही प्राणी जिसमें भय खाता है, संयमसे, व्रतसे, ज्ञानसे भय खाता है, उससे बढ़ कर अभय और अमृतका तत्त्व लोकमें अन्य कुछ नहीं है। नरकगतिमें गये तो क्या-क्या कष्ट नहीं भोगे? भूखका कष्ट सारी उमर भर, सागरों पर्यन्त आयु, प्यासका कष्ट सारी उमर, ठंडी गर्मीकी वेदना सागरों पर्यन्त। पापके उदय आनेपर कठिनसे कठिन दुःख सह लिए जाते हैं, किन्तु पुण्य का समागम होने पर अपने आपकी इच्छासे रंच भी भोग नहीं छोड़े जाते। इन भोगोंकी आसक्तिका परिणमन यह है कि अगले भवमें सदाके लिए भोगोंको तरसते रहेंगे और भोगोंकी प्राप्ति न होगी। और प्राप्ति भी हो गई इस भवमें तो उस भोगप्राप्तिसे कौनसा सुफल निकाल लिया? यह

आत्मा अपने आपको भूलकर अपनी निरंतर हिंसा करता चला आ रहा है।

इन जीव सुघटोंको कभी बहुत सिखाया भी जाता है। पुद्गल भिन्न है, आत्मा भिन्न है। धार्मिक समारोहोंमें कभी-कभी मन भी बदलने की कोशिश की जाती है, पर वाह रे मोह उस समय भी और उसके बाद भी तू मोहसे रंगा हुआ बना रहता है। सुवाने खब सीखा पिंजड़ेमें बन्द होने की स्थितिमें, ऐ! सुवा तुम भग नहीं जाना और भग जावो तो नलनी पर मत बैठना। नलनी एक ऐसा डंडा या कोई गोल चूड़ी सी होती है कि जिस पर बैठकर सुवा उलट जाता है। वह उलटनेपर नलनीको नहीं छोड़ता है। क्यों कि छोड़ दे तो उसे डर लगता है कि कहीं मैं गिर न जाऊँ। सो शिकारी आता है और बड़े आरामसे उसे पकड़ लेता है। खब सीखा सुवाने, देखो नलनी पर बैठना नहीं, और नलनी पर बैठना तो दानोंके चुगने की कोशिश न करना। दाने चुगने का यत्न भी करना तो उलट न जाना और उलट भी जाना तो तुरन्त छोड़ देना। रोज पाठ किया, रोज याद किया। एक दिन पिंजड़ा उसका खुला रह गया, झट उड़कर सुवा भाग गया। भागा तो एक जगह खब अनाजके दाने देखे। उन दानोंको शिकारीने बिखेर दिया था। सुवा पढ़ता जाता कि तू भग मत जाना, भगना तो नलनी पर मत बैठना, ऐसा पढ़ता जा रहा है और बैठ गया उस नलनी पर। देखो नलनी पर बैठना तो दाने चुगने की कोशिश मत करना, दाने चुगता जा रहा है और यह कहता जा रहा है। वह सहज ही उस नलनी पर लटक गया और बोलता जा रहा है कि अगर दाने चुगने की कोशिश भी करना तो उलट मत जाना और लटक भी जाना तो पकड़े मत रहना। खब याद कर रहा है और उस नलनीमें ही वह लटका हुआ है, उसे छोड़ता नहीं। ऐसा बोलने वाला तोता शिकारी को ज्यादह प्यारा लगा और आराम से उसे पकड़ लिया।

एक कोई किसान खब हुक्का तम्बाकू पीने वाला पुरुष था तो हुक्का पीनेमें अपने बच्चेको शिक्षा देता था। देखो बेटा! हुक्केमें बड़े दुर्गुण हैं, इससे बीमारी होती है और अपना गुड़-गुड़ करके पीता जा रहा है। यह कहता जाता है कि देखो बेटा! इससे व्यर्थका खर्च भी होता है और समय भी बरबाद होता है। रोज सिखाया और उसे पक्का करा दिया। वह पुरुष तो गुजर गया। कुछ समय बाद वह लड़का खब हुक्का पीवे। एक सज्जनने समझाया कि तुम्हारे बाप तो तुम्हें खूब शिक्षा दिया करते थे कि हुक्का न पीना, इसमें बहुत विकार हैं। बोला, यह तो हुक्का पीनेकी विधि है कि

हम पीते जायें और लड़के को मना करते जायें। इस तरहकी एक विधि होती है। तो इस विधिसे हमारे पिताजी हुक्का पीते थे। हम भी जब हुक्का पीते हैं तो अपने लड़के को सामने बैठाल लेते हैं और शिक्षा देते जाते हैं। हम अपनी आदतों पर या संयम पर कुछ दृष्टिपात न करें और यथा तथा जीवन व्यतीत करते जायें तो हमने अपने लिए क्या किया ?

भैया ! पहली हानि तो हम यह करते हैं कि हम अपने आपको जानना नहीं चाहते कि मैं क्या हूं ? कैसे जाने ? दिल तो स्त्री पुत्रोंमें विकट लगा हुआ है। इतना सोच सकने का अवकाश ही नहीं है कि मैं अपनेको सबसे निराला केवल ज्ञानज्योतिमात्र तक जान सकूँ। निरंतर विषयवासना में, चेतन अचेतन परिग्रहोंमें ही यह मेरा है ऐसा भाव जमा हुआ है। तो विषयभोग या ममतापरिणाम और मोक्षमार्ग ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते। जैसे कोई मुसाफिर एक साथ पूरबमें भी जाय, पश्चिममें भी जाय ऐसा नहीं हो सकता है। एक सूई एक साथ आगे भी सीती जाय, पीछे भी सीती जाय ऐसा नहीं हो सकता है, इसी प्रकार ममता के, अहँकार के, अज्ञानके परिणाम भी बनाये रहें और मोक्षमार्ग भी पा लें तो यह नहीं हो सकता है। हम अपनी हिंसासे कुछ तो हटें।

भैया ! अपने आपको नहीं जानते यह बहुत बड़ा आक्रमण है। अपने प्रभु पर और इन्द्रियोंके विषयमें लगना यह दूसरा आक्रमण है। अपने नाथ पर और फिर कषायोंकी धुनमें रहना यह हमारा तीसरा आक्रमण है। अपने नाथ पर जहां इतना आक्रमण किया जा रहा है वहां हम अपने को अहिंसक कह दें तो कैसे कहा जा सकता है ? ऊपरी दिखावटी दयासे कहीं अहिंसाका लाभ न होगा। कुछ लौकिक परम्परा ऐसी है कि, जिसमें छूत और छोटे-छोटे कीड़े मकोड़ोंकी हिंसाका बचाव चला आ रहा है। ठीक है पर इतने मात्रसे अहिंसाका पालन नहीं होगा। आप अपने स्वरूपको जानो फिर अपने स्वरूपके समान ही जगतके सब जीवों को जानों। जगतके जीवों को देखकर हमें वह शुद्धज्ञानस्वरूप समझमें आये, बादमें फिर पर्यायोंके संक्लेशसे बचाने की बात आये तो वह पैने ज्ञानकी कला है। और देखते ही हो ये सब पर्यायें, दशाएँ, पाप पुण्य बहुत फैले नजर आये और समझाये-समझाये भी, दिल लगाये-लगाये परमात्मस्वरूपकी बात समझमें आयी यह तो अपने आपकी हिंसा है।

पूज्य श्री अमृतचन्द्र सूरिने एक जगह लिखा है कि "इह सकलस्यापि जीवलोकस्य संसारचक्रकोऽधिरोपितस्यतस्याश्रान्तमनन्तद्रव्यक्षेत्रकालभव-भावपरावर्तैः, समुपक्रान्तभ्रान्तेरकच्छत्रीकृतमोहतया महता मोहग्रहेण

गोरिव वाह्यमानस्य प्रसभोज्जृम्भिततृष्णातङ्कत्वेन व्यक्तान्तराधेरुत्तम्योत्तम्य मृगतृष्णायमानं विषयग्राममुपरुन्धानस्य परस्परमाचार्यत्वमाचरतोऽनन्तशः श्रुतपूर्वानन्तशः परिचितपूर्वाऽनन्तशोऽनुभूतपूर्वा चैकत्वविरुद्धत्वेनात्यन्त-विसंवादिन्यपि कामभोगानुबद्धा कथा।"

यह सर्वजीव लोक संसारचक्रकी कीलि पर ठहरा हुआ है, जैसे कुम्हारका चाक एक बहुत पतली कीली पर पड़ा है, उस कीलीके आधारपर वह चक्र घूमता रहता है। इसी प्रकार यह जीवलोक संसार-चक्रकी कीली पर घूमता है। संसारचक्रकी कीली क्या है? ज्ञानपरिणाम रागद्वेष विषमताका भाव उस कीली पर ठहरा हुआ है, सो अनन्तकाल इसने व्यतीत किए। कोई एक बड़ा हिंडोलना होता है। मशीनसे चलने वाला, जो ५०—६० गजकी डाइमेटरका गोलचक्र हो उसमें पलकियां लगी हैं, बच्चे लोग उस पर भूलनेके लिए बैठ जाते हैं। बहुत जोरसे झुलाते हैं। नीचेसे ऊपरको पलकियोंके जानेमें इतनी व्यग्रता नहीं होती, पर जब ऊपरसे नीचेको पलकियां जाती हैं तो हाय मैं मरा, मानों जान नहीं रही। यों हल्का हो जाता है, पर वह घुमाता रहता है, वह बालक चिल्लाता रहता है, परन्तु भैया! यह कौनसा बड़ा घुमाव है, ३४३ घनराजू प्रमाण, इतने विशाल लोकमें उन पलकियोंसे भी अनोखे ढंगसे अनन्तकालके चक्रमें यह जीव फंसा है। फिर भी देखलो एक ही चाह है कि मैं एकछत्र राज्य करलूँ, सबका धन मेरे ही पास आ जाये। धन तो परिमित है। अपने पास अधिक धन आने की बात सोचना, इसका क्या अर्थ है कि अन्य लोग भूखे रहें, गरीब रहें और सब पैसा मेरे पास आ जाय। एकछत्र सारे राज्यपर राज्य करना चाहते हैं। पर देखो वह कुछ न मिलेगा। होता है सब कर्मोंके उदयसे। भैया! रजःस्थानको आजकल राजस्थान बोलने लगे। रजः मायने धूलि और स्थान मायने जगह। उस धूलि वाले देशमें बालूके रेतको चमकता हुआ देखकर प्यासा हिरण दौड़ लगाता है कि कहीं पानी पीनेको मिल जाय। पर जैसे ही वह दौड़ लगाकर आ पहुंचता है तो वहां पानीका बूँद भी नहीं है। फिर गर्दन उठाया दूरकी रेत पर, फिर उसे पानी जैसा लगने लगा। फिर दौड़ लगाया, फिर वहां पहुंचता है तो पानीका नाम नहीं है। इस तरहसे थककर वह वहीं अपने प्राण गवां देता है। इसी प्रकार यह जीव लोग इन विषयोंकी आशामें रात दिन दौड़ लगाये जा रहे हैं। जहां पहुंचते हैं, वहां ही कुछ नहीं मिलता है। लखपति हैं तो वे असंतुष्ट है, करोड़पति हैं तो वे असंतुष्ट हैं। दूसरे लोगोंकी तो मूढ़ता उनको दिखती है कि इन जीवों पर कौनसा संकट है? खायें और

मौज करें। पर केवल खानेकी स्थिति तक ही यह मोही गम नहीं खाता है, व्यर्थकी थोथी दुःखदायिनी कल्पनाओंके वशीभूत होकर इन दुःखी, पापी, मलिन भटकने वाले जीवोंमें न जाने क्या राज्य करना चाहते हैं। इसे महान् मोह पिशाचने दबा लिया है।

यह मुग्ध प्राणी कोल्हूके बैलकी तरह गोल गोल घूम रहा है। कोल्हूके बैलकी आंखोंमें पट्टी बंधी है पर वह बेचारा यह नहीं जान पाता है कि मैं गोल-गोल घूम रहा हूं। वह तो यही समझता है कि मैं सीधा जा रहा हूं। यदि उसके ध्यानमें यह आ जाय कि मैं यह गोल-गोल चक्कर लगाता हूं, तो वह अपने मात्र इस ध्यानसे ही गिर जायगा, मूर्छित हो जायगा, कुछ पता न पड़ेगा। उस ही जगह यह घूम रहा है। पर यह जान रहा है कि मैं नई-नई जगह जा रहा हूं। इसी तरह दूसरे जीवोंके सुखके लिए जुतने वाला कोल्हूका सा बैल इसके ज्ञानपर अज्ञानकी पट्टी बंधी हुई है सो यह करता तो है गोल-गोल वाला काम, कलकी चर्या, परसोंकी चर्या, जीवन भरकी चर्या वही तो काम कर रहा है। सुबह हुआ, स्नान आदि किया, कुछ धर्मके नाम पर हम सुखी रहें, हमारा परिवार सुखी रहे, हमारी जीवननैया अच्छी तरह बीत जाय, कुछ भजन किया, भोजन किया, वही दाल रोटी जो कल खाई थी, आज खा रहे हैं। पर ऐसा लग रहा है कि नई चीज खा रहे हैं। वही विषयभोग जो कल थे और सोचते हैं कि हम नई चीज कर रहे हैं। वही मान, इज्जत, जिनकी धुन कल थी आज भी है। उन्हीं पंचेन्द्रियों और छठे मनके विषयोंमें ही फंसकर दौड़ लगाये जाता है यह जीव। और इतना ही नहीं दूसरोंको विषयोंमें फंसानेके लिए चतुर, आचार्य, गुरु बन रहा है, विषयोंकी धुनमें लगा हुआ है। इस तरहसे हलुवा बनावो, चलो सिनेमा देखें, वहीं आनन्द है। इस तरहसे उपदेशक गुरु बन रहा है।

भैया! इस जीवने इन विषयभोगोंकी कथा तो बार-बार सुनी है, और परीक्षामें आई है, अनुभव की है, पर "इदन्तु नित्यव्यक्ततयाऽन्तः प्रकाशमानमपि कषायचक्रेण सहैकीक्रियमाणत्वादत्यन्ततिरोभूतं सत्स्वस्यानात्मज्ञतया परेषामात्मज्ञानामनुपासनाच्च न कदाचिदपि श्रुतपूर्वं न कदाचिदपि परिचितपूर्वं न कदाचिदप्यनुभूतपूर्वं च निर्मलविवेकालोकविविक्तं केवलमेकत्वम्।" यह मेरा ब्रह्मस्वरूप, यह मेरा एकत्वस्वरूप, अभेदचैतन्य ज्योति, यह मेरा नाथ जो अनादिकालके मेरे इस अन्तरमें नित्यप्रकाशमान है, वह कषायचक्रके साथएकमेक कर दिया गया है, सो अत्यन्त तिरोहित हो गया है, अब अपने आत्माको जान नहीं सकता और कोई जो आत्माको जानने वाले पुरुष हैं उनकी सेवा उपासनाको चित्त नहीं उमड़ता, तब यह

स्वसंवदेन ज्ञानके द्वारा अनुभवमें आने वाला परमब्रह्मस्वरूप आज तक न कभी सुननेमें आया, न परिचयमें आया, न अनुभवमें आया। ऐसी हिंसामय स्थिति इस जीवकी बन रही है, पर यह जीव अपनेको समझ रहा है कि हम बड़ी मौजमें हैं। बढ़िया मेरा मकान है, बढ़िया मेरे मित्रजन हैं, नौकर चाकरोंकी पूर्ण व्यवस्था है, काम काज मेरा बढ़िया चलता है। अरे ये तो सब स्वप्नकी बातें हैं। मोहकी नींदकी बातें हैं। ये क्षण भरमें नष्ट हो जायेंगे। और कदाचित ज्ञान हो गया तो उनका मूल्य अब वह नहीं रहा। सो ये नष्ट हो जायेंगे। भैया! कल्याणार्थीको अहिंसक सत्य मायनेमें होना चाहिए। हिंसा तो यह दूसरोंको करता ही नहीं है, सदा अपनी हिंसा करता है। झूठ बोला उसमें भी हिंसा, चोरीकी उसमें भी हिंसा, कुशील किया, उसमें भी हिंसा, परिग्रहसंचय किया उसमें भी हिंसा। एक ही पाप है दुनियांमें हिंसा और एक ही धर्म है दुनियांमें अहिंसा। अपने आपको न समझना और विषयोंमें रमना, झूठे समागमोंमें डाले फूले बने रहना यह सब इस निजपरमब्रह्मदेवकी हिंसा है। सत्य मायनेमें अहिंसक बनो। यदि अहिंसाकी ओर कदम बढ़े तो जैनशासनका हमने फल पाया। नहीं तो जैनशासन जैसे अमूल्यरत्नको हमने यों ही सागरमें पटक दिया। सो अपने को पहिचानों, अपने को जानों और अपनेमें रमण करो। इस स्थिति के होनेके बाद फिर जो आपकी बुद्धिमानीकी प्रवृत्ति चले, सो चलने दो पर अपने आपकी दृष्टि करके सत्य अहिंसक बनों, यही जिनशासनका मूल उद्देश्य है। अब यदि जन्म आदिक शुद्धनिश्चयनयसे जीवके स्वरूप नहीं हैं तो जन्म आदिक किससे होते हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं, कि जन्म मरण आदिक शरीरके होते हैं।

देहहँ उब्भइ जर मरणु देहहँ वण्णु विचित्तु।
देहहँ रोय वियाणि तुहुँ देहहँ लिंगु विचित्तु ॥७०॥

देहमें ही जन्म होता, देहमें ही मरण होता, देहमें ही वर्ण होता व नाना प्रकारमें रोग इस देहमें ही होते हैं। और ये पुरुष, स्त्री, नपुन्सकलिङ्ग भी देहमें होते हैं। श्रावक लिङ्ग, गृहस्थलिङ्ग ये भी देहके होते हैं और चित्त मन भी देहके होते है। जीवका अपने आप सहजस्वरूप क्या है? इस पर दृष्टि दो तो ये सब बलाबला जीवके नहीं होते हैं, यह निर्णय मिलेगा। व्यवहारनयसे ये जन्म मरण आदिक धर्म जीवके हैं, अपने ये कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होते हैं। और ये कर्म रागद्वेष मोह भावसे उपार्जित होते हैं। ये रागद्वेष मोह रत्नत्रयकी भावनाके प्रतिकूल हैं। रत्नत्रय क्या कहलाता है कि निज शुद्ध आत्माका सम्यक्श्रद्धान हो, सम्यग्ज्ञान हो और

आत्मामें ही सम्यक् प्रवृत्ति हो, सो इस स्वभावके प्रतिकूल रागादिक भावोंके द्वारा उपार्जित हुए कर्मोंके उदयसे उत्पन्न ये जन्म जरा मरण आदिक हैं। ये यद्यपि व्यवहारनयसे जीवके होते हैं तो भी निश्चयसे तो जीवके नहीं हैं। तो फिर निश्चयसे किसके हैं ? इसका दो टूक उत्तर दिए जानेकी प्रेरणा हो तो बतलावो कि ये जन्मादिक देहके ही होते हैं, जीवके नहीं होते हैं। जीव तो आकाशकी तरह अमूर्त, रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित एक पदार्थ है। फर्क इतना है कि यह आकाश तो है अनन्तप्रदेशी और यह जीव है असंख्यात-प्रदेशी और आकाश तो अचेतन है और यह आत्मा चैतन्य है, देखन जाननहार है। इतना अन्तर है आकाश में और आत्मामें, पर अमूर्तताके नाते जैसा आकाश है तैसा यह आत्मा है।

भैया ! क्या आकाशकी उत्पत्ति होती है ? नहीं होती है। यों ही आत्माकी भी उत्पत्ति नहीं होती है। क्या आकाश का विनाश होता है ? नहीं होता है। ऐसे ही आत्माका भी विनाश नहीं है। यह आत्मा ज्ञानमय है। सो उपाधिके सद्भावसे इसमें अनेक कल्पनाएँ जगती हैं और उन कल्पनाओं से यह दुःखी होता है। इसे न तो आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा उड़ा सकती है और न शस्त्र छेद सकता है। यह तो परवस्तुसे बाधारहित है। यह ईश्वर अपने आप ही अपनेमें भ्रम करके बाधाएँ बनाता है। इस दोहेमें यह शिक्षा दी गई है कि भाई ये जन्म जरा, मरण ये रूप, रंग, चिन्ह ये सब देहमें ही होते हैं। सो देहादिक ममत्वरूप विकल्पजाल को छोड़ो और छोड़ करके अपने वीतराग ज्ञानानन्दमय एकरूप अपने आपको अनुभवो, जैसा कि यह सर्व प्रकार उपादेय है। सब द्रव्योंमें जीव उपादेय है, उसमें भी शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। सब संकटोंसे बचना है तो उसका उपाय क्या है ? निज शुद्धआत्मामें रत होना। यदि जन्म मरणकी विपत्तिसे बचना है तो उसका उपाय क्या है ? यही निज सहज शुद्धस्वरूप ज्ञानमय तत्त्वमें लीन होना। यही शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। श्रद्धा भी निर्मल रखना चाहिए कि मुझे कोई संकट नहीं है। मेरेको ग्रहण योग्य संसारमें कोई भी वस्तु नहीं है। मेरा मात्र यह केवल चैतन्यस्वरूप ही शरण है। अब देहके बुढ़ापेको देखकर मरण को देख कर हे जीव ! भय मत करो, ऐसा निरूपण करते हैं।

देहहँ पेक्खवि जरमरणु मा भउ जीव करेहि।
जो अजरामरु बंभु परु सो अप्पाणु मुणेहि ॥७१॥

देहका बुढ़ापा और मरणको देखकर हे जीव ! तू भय मत कर। जो अजर अमर ब्रह्म है, उत्कृष्ट है वही तो तू है, ऐसा मान। भैया ! सब लगनका

खेल है। यदि आत्माकी आत्माके स्वरूपमें ही लगन बन जाय, मेरा कहीं कुछ नहीं है, कुछ शरण नहीं है, कुछ हितरूप नहीं है—ऐसा निर्णय करके केवल निजशुद्ध आत्मामें ही लगन लग जाय तो फिर उसे भय नहीं है और न कोई संकट है ! ऐसी आत्मा की लगन बढ़ानेके लिए हम रोज पढ़ते हैं। मगर अमल तो करें। किसे नहीं मालूम है कि आत्मा की लगन पुष्ट बनाने का उपाय क्या है ? पूजाके अंतमें ७ बातोंको बोलते हैं ना ? "शास्त्रोंका ही पठन सुखदा, लाभ सत्संगतिका। सद्वृत्तोंका सुजश कहके दोष ढांकं सभीका ॥ बोलूं प्यारे वचन हितके आपका रूप ध्याऊं। तौ लों सेऊं चरन जिनके मोक्ष जौ लों न पाऊं ॥"

भैया ! शास्त्रोंका स्वाध्याय करो। अपनी-अपनी चर्चा देख लो। शास्त्रोंमें मन नहीं लगता। गप्पोंमें खूब मन लग जायगा और लोगों को बुला बुलाकर गप्पे करेंगे। पर खाली हैं तो चलो शास्त्रोंका स्वाध्याय करें। पुराने प्राचीन ऋषियोंके ग्रन्थोंमें मन नहीं लगता तो आधुनिक पद्धति की जो पुस्तकें हैं उनको पढ़ें और उनको पढ़ करके यह इच्छा बनायें कि हम ऋषिजनोंके प्राचीन ग्रन्थोंका अध्ययन करें। अच्छा बतलावो कोई रोज दो घंटे पढ़ता है ? फिर यह शिकायत क्यों है कि हमें अभ्यास नहीं होता। हां, पुरुषार्थ करो और न बने तो उसका कुछ ख्याल करना चाहिए। तो यह पहिली बात कही जा रही है।

दूसरी बात क्या है कि सत्संगतिका लाभ हो। अब दुकानमें, बैंकमें और जगह दफ्तरमें सभी जगह कैसे-कैसे आदमी मिलते हैं ? क्या कोई विरक्त संत मिलता है। नहीं ? कोई साधु मिलता है ? नहीं। तो सबसे बातें करनी पड़ती हैं। यदि बहुत समय असत् पुरुषोंसे बातें करनी पड़ती हैं तो उसका चौथाई समय तो ऐसा निकालो कि सत् पुरुषोंका संग बना रहे। जो असार संसारसे विरक्त हुए ऐसे गृहस्थ भी होते हैं, साधु ही हों ऐसा नहीं है। गृहस्थोंमें भी कोई ऐसे पड़ौसी हों कि जो कल्याणके इच्छुक हैं, धर्ममार्गमें बढ़ना चाहते हैं, मंद कषाय वाले हैं, उनकी गोष्ठी बनावें।

भैया ! उद्यम करो, उद्यम बिना सिद्धि नहीं है। कोई बालक कहता है कि मां हमें तैरना आजायगा ? हां बेटा, आजायगा चलो पानीमें। अरे नहीं पानी न छूना पड़े और तैरना आ जाय, तो यह कैसे हो सकता है ? उपाय सब बताए गए हैं, उनपर अमल करनेकी कसर है। जब धर्मके लिए आप इतना बड़ा परिश्रम कर रहे हैं, तब थोड़ासा आचार्योंने जो ७ बातें बताई हैं, उनमें भी अधिक लगो और फिर न लाभ मिले तो कहो। लाभ नहीं मिले यह हो ही नहीं सकता है। तो दूसरी बात है सज्जनोंकी संगति।

ये सब बातें कही जा रही हैं। अपने मनमें संकल्प कर लो कि एक घंटा प्रतिदिन स्वाध्याय जीवनमें करेंगे। जब तक यह शास्त्र होता है तब तक नियमसे शास्त्रोंमें आवो तो स्वाध्याय की छूट समझलो। पर जब यह शास्त्र न हो या विधि न बैठे तो फिर १ घंटा तो नियमसे स्वाध्याय करो। इसमें कसर न रखो। रही मन लगानेकी बात। तो आप पहिले बड़े-बड़े ग्रन्थ न उठायें। छोटे सरल ग्रन्थ जो आधुनिक ढंगसे लिखे हुए हैं उन ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें लगिए। धीरे-धीरे चलकर ऊँचे ग्रन्थोंमें प्रवेश करो। जिसे सुख शांति एवं आनन्दकी भावना हो वह ऐसा संकल्प करले कि मुझे १ घंटा प्रतिदिन ज्ञानार्जन करना है। कुछ भी सुनने को मिल जाय तो वह स्वाध्याय है और नहीं सुनने को मिलता तो खुद किसी नियत ग्रन्थका श्रम पूर्वक स्वाध्याय करें। दूसरी बात कही गई है सत्संगतिकी, सो अपने पड़ौसियोंको ढूंढ लो। सत्पुरुष भी आपको मिलेंगे। हर जगह २-४-१०-१२ सत्पुरुष मिलते हैं। अपनी गोष्ठी बनालो कि सब परस्परमें स्वाध्याय कर लिया जाय, कुछ चर्चा कर ली जाय।

तीसरा उपाय है सद्वृत्तोंकी गुणगण कथा। देखो बड़ा आनन्द आयेगा गुणोंकी चर्चामें, गुणी पुरुषोंकी प्रशंसा करनेमें आत्मामें बड़ी उन्नति जगेगी। दूसरेकी निन्दा करना, यह बहुत बुरा दुगुण है क्यों हम दूसरोंकी निन्दा करनेमें उतारु हो जायें? अरे दूसरेकी निन्दा करनेसे अपन को क्या लाभ है? खुदको लाभ हो या किसी दूसरे को लाभ हो तो दूसरेकी निन्दा करो। दूसरे की निन्दा करनेसे कर्मबंध होता है और परिणाम खराब होता है, समय व्यर्थ जाता है। सो तीसरा उन्नतिका उपाय है कि गुणी पुरुषोंके गुणोंका बखान करें। खुद तो अपन चक्करमें फंसे हैं, कर्मोंसे बंधते हैं, शरीरमें फंसे हैं, नाना प्रकारके विकारों की प्रेरणा है। खुद तो बड़े संकटमें हैं। दूसरों के अवगुण क्यों बखानते हैं? संकल्प बनालो कि हमें इस तरहसे चलना ही है, फिर चिगो नहीं। देखो फिर जीवनमें उन्नति आती है या नहीं?

चौथा उपाय है सबके दोषोंको ढांकना। किसीके दोषोंको बखाननेमें पहिली हानि तो यह है कि हमने अपने उपयोगको दोषों में डाल दिया। फिर उसके बादमें दूसरे स्टेजकी बीमारी यह है कि हम अपने मुखको और जबानको गंदी कर लेते हैं और तीसरी स्टेज फिर यह है कि फिर किसीके लात घूंसेका इनाम मिल जाय। किसी के अवगुण कहनेमें, निन्दा करनेमें तीसरे स्टेजकी टी० बी० हो जाय तो फिर क्या होगा? निन्दा करनेके प्रसंगमें तीसरे दर्जेकी टी० बी० हो जाय तो फिर पछताना पड़ता है। पहिले

तो दूसरोंकी आलोचना और निन्दा सुहाती है। फिर उसके परिणाममें जब संकट घेर लेते हैं तब रोना आता है। अतः दोषवादमें मौन रहो।

५वां उपाय है, बोलूँ प्यारे वचन हितके। मैं सबसे प्रिय हितके वचन बोलूँ यह उतार लो जिन्दगीमें। क्रोध आता है तो सारी बातें भूल जाते हैं, प्रिय वचन बोलने की याद नहीं रहती है। लेकिन कोशिश की जाय तो क्रोध में कमी आ जायेगी। और फिर प्रिय हित वचन बोलने की आदत बन जायगी। बतावो आप यदि किसीको धन नहीं दे सकते, तनसे श्रम नहीं कर सकते तो जो मुफ्तकी चीज है भले वचन बोलना, उसमें क्यों कंजूसी की जा रही है? अच्छे वचन बोलो तो खुद भी सुखपूर्वक रह सको और दूसरे भी सुख पूर्वक रहें। कैसी चुनी चुनी बातें पूजामें रोज बोल जाते हैं। पर उसका अमल, पालन नहीं हो पाता तो ज्यों के त्यों रह जाते हैं।

भैया! एक पंजाबीके घर एक तोता पला था तो उसको सिखा रक्खा था "इसमें क्या शक?" तोता बोलता है ना? बोलता है। उसके घर एक ब्राह्मण आया। उस तोतेका रंग भी बड़ा सुन्दर था। तोते वाले से बोला क्या यह तोता बेचोगे? हां हां बेचेंगे। कितनेमें बेचोगे? १०० रु० में बेचेंगे। अरे आठ आठ आने के तो मिलते हैं। १०० रु० में यह क्यों बेचते हो? कहता है तोते से ही पूछो कि क्या इसकी कीमत १०० रु० है? तोते से पूछा कि क्या तुम्हारी कीमत १०० रु० है? तो बोला तोता कि इसमें क्या शक? उसे प्रमाण हो गया कि इसकी कीमत १०० रु० है। खरीद लिया। अब अपने घर लाकर उसे खूब दूध पिलाया खिलाया, चार-छः दिन के बाद वह ब्राह्मण रामायण लेकर बैठ गया। सोचा कि तोता तो विद्वान् है? कहो राम राम। बोला इसमें क्या शक? सोचा यह हमसे भी ज्यादह विद्वान् है, इसे रामके नामसे भी दिलचस्पी नहीं है, इसको तो ब्रह्मस्वरूप का पता होगा। फिर कुछ चरित्र बोलने लगा तो बोला इसमें क्या शक? फिर ब्रह्मस्वरूपकी बात बोलने लगे कि वह एकस्वरूप है, अखण्ड है, कहो तोते। बोला इसमें क्या शक? जब बहुत बातें कर चुका तो उत्तर केवल यही मिले, इसमें क्या शक? तो उसको शक हो गया कि यह तो मूढ़ मालूम होता है। तो ब्राह्मण पूछता है कि क्या हमने १०० रुपये पानीमें डाल दिए? तोता बोला इसमें क्या शक? वैसे ही हम आप पढ़कर जाया करते हैं पर पढ़ने मात्रसे हमारी आपकी आत्मामें कुछ अन्तर न पड़ेगा। हम छुपे-छुपे गुप्तरूपसे आत्महितके लिए इन बातोंका पालन करें और आत्मस्वरूप पर दृष्टि दें तो हमें उन्नतिका उपाय प्राप्त हो सकता है।

छठा उपाय क्या है कि भगवान् की भक्ति करें, भगवान् के जो गुण

हैं, उनका स्वरूप है, शुद्ध ज्ञानप्रकाश है। उसका अंदाजा लगावो कि कैसा स्वरूप है? यही प्रभुकी उत्कृष्ट भक्ति है। सो इस प्रकार प्रभुके गुणोंका अनुराग बढ़ावो।

ध्यां उपाय है अपने आत्माका ध्यान करो। आत्माका ध्यान कैसे बने? तो उसके उपाय दो हैं। एक तो यह कि परवस्तुवों को अहित जान भिन्न समझकर उन सबका ख्याल छोड़ दो और कुछ क्षण तो बड़े विश्राम से स्वस्थित हो जावो, आत्माका ध्यान बन जायगा। और दूसरा उपाय यह है कि अपने बारे में ऐसा ध्यान बनाओ कि यह मैं केवल जाननमात्र हूं, प्रतिभासमात्र हूं। जाननका जो स्वरूप होता है, जाननका जो लक्षण है, साधन है उस रूप अपना उपयोग बनाओ कि यह मैं जाननमात्र हूं, यदि जाननका जानन बन गया तो जाननकी अनुभूति हो जायगी और जानन की अनुभूतिमें ही आत्माकी अनुभूति होती है। इस तरह जरा अपने आत्माकी लगन तो बढ़ावो, कुछ भी भय न रहेगा। भय होता ही तब है जब हम आत्माकी दृष्टि छोड़ते हैं और परपदार्थोंमें दृष्टि फंसाते हैं, तब क्लेश होते हैं। अभी यह काम पड़ा है, अभी यह काम पड़ा है, इन विकल्पों से ही तो दुःखी है और जिसके ज्ञानमें यह है कि मुझे कोई काम नहीं पड़ा है, सर्व परपदार्थ हैं, उनका परिणमन उनके कारण उनमें है, फिर भयकी क्या बात है?

हे जीव! इस देहके बुढ़ापे को देखकर, मरण को देखकर भय मत करो। यद्यपि व्यवहारनयसे जीवके बुढ़ापा और मरण है तो भी शुद्ध निश्चयनयसे यह बुढ़ापा और मरण देहके ही होता है, जीवके नहीं होता है, ऐसा मानकर हे मुमुक्षुसंत रंच भी भय मत करो। तेरा आत्मा तो केवल अपने स्वरूपमात्र है। जो कोई भी अजर है, अमर है, जन्म, जरा, मरणसे रहित है, ब्रह्म शब्दसे जो वाच्य है ऐसा यह चैतन्य सत् तेरा शुद्ध आत्मा है। कैसा है यह तेरा पवित्र आत्मा? यह आत्मा सर्वोत्कृष्ट है। अपने आपकी उत्कृष्टता अपने आपको विदित हो तो अपनेमें आत्मजागृति होती है। ऐसे सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मस्वभावरूप अपने आत्माको जानो। कैसे हम आत्मा को पूर्णरूपसे स्पष्ट जान सकते हैं? पंचेन्द्रियके विषयादिक समस्त विकल्प जालों को छोड़कर, परमसमतारूपमें स्थित होकर इस शुद्धआत्माकी भावना करो। सामने भोजन रखा है, इमरती बनाकर रख दिया है और कहें कि जरा इसका स्वाद जानो और एकदम साफ जान लो कि इसमें क्या स्वाद है? तो क्या करते हो? खा लिया और जान गए। सामने रखी है, अब क्या कसर है? इसी प्रकार इस शुद्ध आत्माको जानना है तो विकल्प छोड़ो समाधिमें

आवो तो शुद्ध आत्माका जानन होगा।

भय्या ! खुदके किए बिना खुदका काम तो न निपटेगा। दुकानका हिसाब किताब चार महीनेसे पड़ा है तो वह आपके करनेसे ही तो पूरा पड़ेगा, झुकनेसे तो काम न निकलेगा, काम करना ही पड़ेगा। कदाचित् घरके आंगनमें भींतका कोई हिस्सा गिर गया हो, आंगकमें ढेर लग गया हो तो रोनेसे से सफाई न होगी, खुदके कराने या करनेसे ही सफाई होगी। खुदके कुछ किए बिना सफाई न होगी, झांकनेसे सफाई न होगी। इसी तरह मोक्षमार्गका आनन्द गप्पोंसे न मिलेगा, झुकनेसे न मिलेगा, साहस हो तो क्रियासे, आचरणमें, श्रद्धानमें, ज्ञानमें उतर जावो तो उसका आनन्द मिले। तो हे भव्य पुरुष ! विकल्प जालोंको छोड़कर परमसमाधिमें स्थित होकर अपने केवल शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करो।

अब योगेन्द्रदेव यह अभिप्राय मनमें रखकर कि चाहे देह छिद जाये, चाहे देह भिद जाये तो भी शुद्ध आत्माकी भावना ही करो। सदाके लिए संकटों से छूटनेका उपाय करनेमें बहुत बड़ा त्याग करने की आवश्यकता है और यह त्याग मूलमें भी ज्ञानस्वरूप है। अर्थात् अपने को ज्ञानमात्र निरखो इसमें ही अन्य सर्वपदार्थोंका त्याग आयेगा। फिर इस सहज त्याग पर इतना दृढ़ आग्रह करें कि चाहे देह छिद जाये या मिट जाय तो भी इस शुद्ध आत्माकी अर्थात् ज्ञानात्मक अपने आपकी भावना ही करें।

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ जोइय एहु सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ जिं पावहि भवतीरु ॥७२॥

शरीर चाहे छिद जाय अर्थात् चाहे टूक-टूक हो जाये, भिद जावे, अर्थात् इसमें छिद-छिद हो जावे अथवा क्षयको प्राप्त हो जाये, बिल्कुल ही मिट जाये फिर भी हे योगी तुम वीतराग, चिदानन्दस्वरूप उस एक ज्ञान-स्वरूप निजआत्मतत्त्वकी भावना ही करते रहो। जो तत्त्व निर्मल है, अर्थात् भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्मसे रहित है, इस भावनासे क्या होगा ? इस परमात्मतत्त्वके ध्यानसे तुम संसारका तीर प्राप्त कर लोगे। अर्थात् संसारसागरसे पार हो जावोगे। यहां आत्मतत्त्वकी भावनाके लिए कहा जा रहा है।

मोहीजन विषयसाधनोंकी प्राप्तिके लिए इतनी हिम्मत करते हैं कि चाहे शरीर थक जाये, पसीनेसे लथपथ हो जाय, भयानक जंगलमें, समुद्रमें जहाजोंमें कहीं भी आना जाना पड़े, समय पर चाहे भोजन भी न मिले पर जो विषय चाहा गया उस विषयकी प्राप्ति करली ही जाय—ऐसी हठ करते हैं। मोही जन इस अज्ञानतापूर्ण आग्रहपर तुले रहते हैं, तो ज्ञानी जन

इस आग्रहपर दृढ़ रहें कि चाहे शरीर छिद जावे, भिद जावे, हम तो इस निजज्ञायकस्वभावकी भावनामें रहेंगे। सुकुमार स्वामीको बाघने नोच-नोचकर खाया, तिसपर भी उनकी यही परिणति थी कि चाहे यह शरीर छिद जाये, भिद जाये, क्षयकी प्राप्ति हो जावे, फिर भी उस आत्म-देवकी भावनामें ही रहेंगे।

भैया ! शरीर तो मिलता रहता है और शरीरको क्यों चाहते हो ? शरीरका मिलना बड़ा कठिन उपद्रव है। यह शरीर मिला, तब अहमबुद्धि हुई, यह मैं हूं। और जब माना कि यह मैं हूं। तो मोही परशरीरको मानता कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है इत्यादि, और फिर उन सबको राजी रखनेके लिए धनका संचय किया और फिर उस धनमें जो बाधक होने लगा, उनमें लड़ाई लड़ने लगा, और तरह रागद्वेषमय क्षोभकी वृत्ति बनाई किस बात पर ? एक शरीर मिला है इस बात पर। क्या यह शरीर चाहिए अपनेको ? नहीं चाहिए ना ? तो वर्तमानमें भी इस शरीरके अनुरागी न बनो। इस मनको पापोंसे बचानेके लिए इस शरीरसे अधिकाधिक उपकार करो। जैसा होना हो, शरीर छिदता हो छिदे, भिदता हो भिदे, किसी भी हालतको प्राप्त होता हो, पर अपने शुद्धज्ञानस्वरूपकी भावना न छोड़ो।

ये बड़े राजपुत्र लोग जिन्हें साधु अवस्थामें वैरियोंने और सिंहादिके क्रूर जीव जीवोंने उपसर्गसे उपद्रुत किया, क्या उनमें यह सामर्थ्य न थी कि उन्हें हटा दें ? पर इस हटानेका विकल्प करनेका फल संसार था और कुछ समय तक रुलना था, इस कारण शरीर किसी भी अवस्थाको प्राप्त हुआ उसका विकल्प नहीं किया, उसे इष्ट नहीं समझा। यहां यह बतला रहे हैं कि जो पुरुष देहके छिदनेकी नौबत आनेपर भी रागद्वेष आदि क्षोभ परिणामोंको न करते हों, एक शुद्धज्ञानस्वरूप आत्माकी भावना करते हों, वे यथाशीघ्र मोक्षको प्राप्त होते हैं। कुछ तो निर्णय बना लो।

भैया ! इस शरीरको आरामसे अर्थात् प्रमादमें न रखो। इससे मोह न करो। दूसरोंके कुछ उपकारमें शरीर न लगे, ऐसी दुर्बुद्धि न बनावो खुदगर्जीका फल खुदके लिए अच्छा नहीं होता है। यह शरीर तो मिटेगा, जलेगा, सड़ेगा, यहां अपवित्र दुर्गन्धित शरीर जिससे परमार्थतः रंच भी इस ज्ञानस्वरूपी आत्माका सम्बन्ध नहीं है, ऐसे शरीरमें मोह करना महा मोही और तुच्छ पुरुषोंका काम है। शरीरका मोह छोड़ो, जीनेके और संयमके लिए जीना और आत्मरमणके लिए संयम करना, ये बातें अलग हैं और लक्ष्य स्वादका लेना, मोह करना, ये बातें दुर्गतिमें ले जाने वाली हैं। इसलिए अपनी ओर एकचित्त होओ। दूसरोंका ख्याल

कर-करके अब तक भी तो कुछ नहीं मिला, आगे क्या मिलेगा ?

अब तो बड़े लड़के हो गए, क्या लड़कोंसे सुख देखा होगा ? आकुलताएँ और आपत्तियां ही पाई होंगी। लड़कोंके लड़के हो गए तो आशा करते हैं कि लड़कोंने तो सुख नहीं दिया अब लड़कोंके लड़के सुख देगें। उनसे भी सुख नहीं मिला तो अब पंतियोंकी आशा बनायेंगे। यह मोह बड़े खोटे परिणाम वाला है। जंगलके सब जीव एक समान हैं। उनमें प्रभुताका स्वरूप है। ऐसे अमृतका पान करनेमें बाधा डालने वाला यह मोह परिणाम है। ये मोही जन दो तीन जीवोंको अपना मान रहे हैं। ये दो तीन भी तो एक दिन विदा हो जायेंगे। यह मानने वाला भी न रहेगा। यह भी विदा हो जायगा। सारा स्वप्नका तो काम है। अहो, इस मोहकी नींदके स्वप्नमें कितनी लोटापाई की जा रही है ? हे कल्याणार्थियों ! देहके मोहको छोड़ो। हे योगी पुरुष। कर्मकृत भावोंको और अन्य चेतनद्रव्योंको हम निश्चयसे भिन्न ही समझें।

कम्महँ केरा भावडा अण्णु अचेयणु दव्वु।
जीवसहावहँ भिण्णु जिय णियमिं बुज्झहि सव्वु ॥७३॥

कर्मोंके सम्बन्धी जितने भी भाव हैं और अन्य जितने भी अचेतन द्रव्य हैं। हे आत्मन् ! तुम उन सबको अपने जीवस्वभावसे भिन्न ही जानों। यह आत्मतत्त्व विशुद्धज्ञानदर्शनस्वरूपी है। और ये परभाव, परद्रव्य ज्ञानदर्शनसे अत्यन्त जुदा हैं। सो हे जीव ? इस अपने आपके आत्मतत्त्वको समस्त परद्रव्योंसे और परभावोंसे भिन्न जानों। सुखका मार्ग तो बिल्कुल सीधा है पर चलते नहीं बनता तो इसमें दोष किसका है ? खुद चलते नहीं बनता और दोष दिया जाता है अन्य लोगों पर। खुद शांत होते बनता नहीं दोष दिया जाता है कि इसने मुझे क्रोध कराया है। खुद ज्ञानरूपसे परिणम नहीं सकते, अपराध लगाया जा रहा है कि स्त्रीने, बच्चों ने मुझे फांस लिया। नाच न आवे आंगन टेढ़ा। कोई संगीतकी सभा जुड़ी हुई थी। नाचने वाला भी घुंघुरु पहिने खूब तैयार खड़ा हुआ है। कोई अवसर ऐसा आये कि पता नहीं क्या हो जाये कि कलाका रूप बनाया ही न बने, नाचते ठीक न बने तो कहता है कि मालूम पड़ता है कि यह चौक टेढ़ा है। नाचते खुद नहीं बनता और बताता है चौकका दोष। इसी तरह खुद तो अपराधी है, मोही है, राग करता है व्यर्थमें मोहियों पर संसारके असार जीवों पर जिनसे कुछ सम्बन्ध भी नहीं और दोष देता है कि अमुकका कुछ लेनदेन है या अमुक मुझे छोड़ते नहीं है। घरके लोग इजाजत देते नहीं हैं। तो क्या तुम्हारा आत्मा इन

सब मोही जीवोंके हाथ बिक चुका है ? जो श्रद्धामें ऐसी परतन्त्रता अनुभवी जा रही है कि हम कुछ नहीं हैं। ये लोग इजाजत दें, छोड़ दें तो हम अपने शुद्ध आत्माकी भावनामें लगें। समस्त परद्रव्योंको और परभावोंको अपने से भिन्न ही समझो। इस दोहेमें यह बताया जा रहा है कि जब यह मिथ्यात्व अविरतिकषाय और योगको हटाता है, निर्मल परिणाम बनाता है, उस काल यह सुरक्षित है। अनुभवमें आये कि जो शुद्ध आत्मतत्त्व है वही उपादेय है। इस प्रकार परभाव और परद्रव्योंसे भिन्न आत्मतत्त्वकी भावनामें प्रेरणा देने वाला यह दोहा कहा गया है।

अब यह निश्चय किया जा रहा है कि हे ज्ञानी पुरुष! ज्ञानमय परमात्मासे भिन्न समस्त परद्रव्योंको छोड़कर एक शुद्धआत्माकी ही भावना भावो।

अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु परायउ भाउ।
सो छंडेविणु जीव तुहुं भावहि अप्पसहाउ ॥७४॥

हे बनावटी दुःखी प्रभो! अपने आत्माको छोड़कर अन्य समस्त जो परभाव हैं उन्हें तू भिन्न जान। तू तो एक ज्ञानमय अलौकिक सत् है। और अन्य सब तेरे स्वरूपसे अत्यन्त पृथक् परभाव हैं परद्रव्य हैं। उनको छोड़ और आत्मस्वभावकी भावना करो। यह आत्मा केवलज्ञानादिक अनन्त गुणोंका पिण्ड है। इस आत्माको लक्ष्यमें लेनेके लिए उन समस्त गुणोंमें से एक ज्ञानमात्र गुणोंके रूपमें भावना करनी चाहिए। अन्य सब गुण निराकार हैं, उन गुणोंको लक्ष्यमें नहीं लिया जा सकता। ज्ञानगुण साकार है, उस ज्ञानको केवल शुद्धज्ञानके स्वरूपरूपमें लक्ष्यमें लिया जाय तो इस आत्मा की खबर पड़ती है।

भैया! इस ज्ञानमय आत्माको छोड़कर जो तुम्हारे घरमें रहने वाले हों उन्हें तुम भिन्न जानों। तुम्हारे घरमें रहने वाले कौन हैं? आपके घरमें कौन रह रहा है? २-४ के नाम बोलो। आपके घरमें ये रागद्वेष मिथ्यात्व आ गये हैं। विषय, इच्छा, शल्य ये सब बस रहे हैं। हम ईटोंके घरकी बात नहीं पूछ रहे हैं। वह तो तुम्हारा घर ही नहीं है। वे तो भिन्न पर-द्रव्य है। मिट्टीके घरको किसने बनवाया? किसके प्रबन्धसे तैयार हुआ था? आपके बाबाने बनवाया होगा तो कुछ खबर है कि उसको बनवाकर बाबा कितने दिन रहे थे? चाहे आधा ही बन पाया हो मर गए हों। और प्रायः ऐसा ही होता है कि बाबाके बाद तुम्हारे पिताने पूरा किया होगा। पर उस मकानमें तुम्हारे पिता कितने दिन तक रहे होंगे? कुछ खबर है। हां होगी खबर, और तुम उस मकानमें कितने दिन रहोगे? यह घर तुम्हारा

कैसे ? इस मिट्टीके घर की बात नहीं की जा रही है किन्तु अपने आत्मप्रदेश से पूछा जा रहा है कि ज्ञानमय भावोंको छोड़कर अन्य जो भाव हैं, विषय कषाय हैं वे सब तुमसे न्यारे हैं। तू ऐसे ज्ञानमय निजस्वरूपको तो देख। उन सब परभावोंको छोड़कर तू अपने आत्मस्वभावकी भावना कर।

अन्तरमें परभाव तो हैं मिथ्यात्व रागद्वेषभाव और बाहरमें परभाव हैं शरीरादिक पदार्थ। ये सब तुमसे अत्यन्त भिन्न हैं। सो पूर्वोक्त इन सब भावोंको जो शुद्धआत्मासे विलक्षण हैं, भिन्न हैं, न्यारे हैं, विपरीत हैं, उनको छोड़कर हे मुमुक्षु पुरुष इस शुद्ध आत्मस्वभावकी भावना कर। कैसा है यह शुद्ध आत्मस्वभाव ? जो कारणसमयसाररूप है। जैसा मिस्मरेजममें यह देखते हैं कि मुँहमेंसे कागजकी धारियां निकालते जाते हैं, उनका अन्त नहीं आता। ऐसा देखने वालोंको लगता है। यह एक खेलकी बात है। इस कारण समयसार में से भी पर्यायकी धारियां निकल रही हैं, निकलती जा रही हैं, अंत नहीं आता। यह पुराण पुरुष ज्योंका त्यों ही है और ये परिणतियां इससे निकलती चली जा रही हैं।

हे आत्मन् ! तू उस ध्रुवस्वभावको तो समझ कि यह मैं हूं और उसकी जितनी परिणतियां निकलती हैं, अवस्था होती हैं उन सबको तू पर जान, भिन्न जान, अनात्मीय जान, उनमें मोह मत कर। इसको तो यह कहा जा रहा है कि तू अपने आपके रागद्वेष विचार वितर्कादिक परिणामों से भी मोह मत करो। किन्तु यह मोह कर रहा है ईंट, पत्थर, धन वैभवसे। यह तो चतुर है ना ? शायद ऐसा अर्थ लगा बैठा हो। जैसे एक कथानकमें है कि एक राजाके पास रोज पुरोहित शास्त्र पढ़ता था। दो दिनके लिए वह बाहर चला गया। अपने लड़केसे कह गया कि तू राजा को शास्त्र सुना देना। शास्त्र पढ़ने बैठा तो प्रकरण आया मांसके त्यागका तो वह बोलता है कि जो रंच भी मांस खाता है वह सीधा नर्क जाता है। राजाको बहुत बुरा लगा। वह मांस खाने वाला था। और कोई नरकका नाम लगावे तो बहुत बुरा लगता है। चाहे नरक किसीने देखा हो या नहीं, सुना हो या नहीं, पर कोई कहदे तो सुनने वालेको बहुत बुरा लगता है। सो राजा को बहुत बुरा लगा। दूसरे दिन पुरोहित आया तो राजा ने उससे शिकायत कर दी कि तेरा लड़का तो बहुत ही बुद्धू है। वह तो कहता था कि जो रंच भी मांस खाता है वह सीधा नरक जाता है। पुरोहितने कहा महाराज वह ठीक कहता था कि जो रंचमात्र भी मांस खाता है वह सीधा नरक जाता है। जो सेरों मांस खाता है उसकी बात नहीं कही जा रही है। अरे कहां तो

यह उपदेश हो रहा था कि अपने राग द्वेषकी वृत्तिसे भी मोह न करो और कहां यह वृत्ति जग उठी है कि ईंट पत्थर मल मूत्रके पिण्ड भिन्न देह इनसे प्रीतिकी जा रही है। शायद ऐसा ही अर्थ लगाया होगा कि रागोंसे प्रीति न करें, पर अन्य वस्तुवोंसे तो करें। इसीलिए तो छातीसे लगाए ही रहते हैं। पत्थरों की ईंटोंको शायद ऐसा अर्थ होता हो।

अरे भैया! आंखोंके सामने तिलभर भी कागज अड़ जाये तो सारा पहाड़ ढक जाता है। इस उपयोग में परमाणुमात्र भी राग रहता है तो वह आत्माको नहीं जानता। जिसकी श्रद्धामें परमाणुमात्र भी राग है वह आत्माको नहीं जानता और उपयोगमें जिस समय रंच भी राग बस रहा हो उस समय आत्माका अनुभव नहीं लगता। इन बाहरी पदार्थोंसे मोह छोड़ो। इसका आचार्य उपदेश नहीं देते हैं यह तो बेहूदापन है। उपदेशमें यह कहा जा रहा है कि हे आत्मन् तेरी जो क्षण-क्षणकी नवीन-नवीन अवस्था हो रही है उस अवस्थारूप तू नहीं है। वह अवस्था विनाशीक है। उससे तू प्रीतिको तज और निज कारणसमयसार की सेवा कर। यह कारण-समयसार कैसा है? अभेदरत्नत्रयस्वरूप है। अभेदरत्नत्रय कैसा है कि कार्य समयसारकी साधना करने वाला है। कार्यसमयसार कैसा है? जहां केवल-ज्ञान केवलदर्शन अनन्तआनन्द अनन्तशक्ति इस गुणचतुष्टयका जहां विकास है। ऐसे ज्ञानादिक चतुष्टय विकासरूप अरहंतसिद्ध अवस्थाका साधक जो चैतन्यस्वभाव है, चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन है वह कारणसमयसार परिणाम शुद्धआत्मास्वरूप उपादेय है। उसको ही उपादेय जानों और उससे अन्य जो कुछ भी तत्त्व हैं उनको हेय समझो।

इस ज्ञानमय परमात्माकी भावनाके अनुरागमें श्री योगेन्द्रदेव कह रहे हैं कि तुम सर्वसंकल्प विकल्पजालोंको छोड़कर अपने आपमें विश्रामको, परमविश्राम को लेते हुए शुद्धज्ञानके अनुभवका आनन्द लूटो। कष्टसे, क्लेश से कर्म नहीं कटते किन्तु अलौकिक ज्ञानमय आनन्दके अनुभवसे कर्म कटते हैं। भोगोंकी रुचिको छोड़ो और अपने ज्ञानस्वभाव की रुचि करो। ये समस्त बाह्य भावमात्र धोखा ही हैं। इनसे संकट मुक्त नहीं हो सकते हैं। सो सदाके लिए संकटोंसे पार होनेके लिए अपने आपमें बसे हुए अनादि अनन्त अहेतुक चित्स्वभावमात्र परमपिताकी उपासना करो। अब जो निश्चयसे ८ प्रकारके कर्मोंसे रहित है और सर्वदोषोंसे रहित है, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे सहित है, ऐसे आत्माको तुम परमात्मा जानों, ऐसी आत्माकी भावना करो।

भैया! सम्यग्ज्ञान वह कहलाता है जो किसी वस्तुको शुद्ध उसके

निजभावरूप देखे। शुद्धका अर्थ है किसी वस्तुको केवल उसही वस्तुरूप देखना। किसीसे मिले जुले या जो बात उसमें स्वयं स्वभावसे न हो, किसी परका सन्निधान पाकर विभाव परिणमन हो, उसको न देखे किन्तु सहज-स्वभावरूपसे वस्तुको देखे तो उस ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आत्माको भी इसी केवलस्वरूपमात्र देखनेको ही परमात्मतत्त्वका देखना कहते हैं। वह किस प्रकार है ?

अट्ठहँ कम्महँ बाहिरउ सयलहँ दोसहँ चत्तु।
दंसणणाणचरित्तमउ अप्पा भावि णिरुत्तु ॥७५॥

जो ८ प्रकार के कर्मोंसे रहित हैं, सर्वप्रकारके दोषों से मुक्त है, जो दर्शन, ज्ञान, चारित्रमय है। हे भव्य जीव ! उसको तुम परमात्मा जानो और ऐसी भावना करो।

भैया ! शब्दोंमें स्वयं सामर्थ्य नहीं है कि शब्द किसीको ज्ञान जगा दें। किन्तु जिनका ज्ञान जगा हुआ होता है वे शब्दोंका निमित्त पाकर अपने आपमें जग जाते हैं। कोई बच्चा राजा राणाकी बारह भावनाएँ बोलता है, सुनने वाले पचासों जन हैं। उन पचासोंमें से किसी को उसका बड़ा ऊंचा गर्भित अर्थ सूझता है। किसीको केवल इतना ही सूझता है कि हमारे पाठ-शालाके बच्चे देखो कितना अच्छा बोल रहे हैं। जो बोल रहे हैं उसका वाच्य अर्थ उन्हें प्रतीत नहीं होता और कुछ लोगोंको तो ऐसा लगता है कि क्या बेकारकी बातें बच्चोंको सिखा रहे हैं। स्कूलमें पढ़ानेसे तो काम चलता है और यह व्यर्थका काम लगा रखा है। चीज वही है। जो जिस योग्य है वह उसही माफिक अर्थ लगाया करता है। शब्दोंमें स्वयं सामर्थ्य नहीं है कि जन-जन को अपनी बात बता दिया करें। एक फल होता है अनन्नास। अब कोई अनन्नासकी तारीफ शब्दोंसे करे तो जिसने नहीं खाया उसके लिए शब्द बेकार हैं। उसने कुछ अर्थ नहीं रखा, कुछ भाव नहीं निकाला और जिसने अनन्नास खाया है, तारीफ करना तो दूर रहा, नाम लेनेसे ही मुँहमें पानी आ गया होगा। शब्द स्वयं किसीको क्या बताते हैं ? ये शब्द अपने-अपने ज्ञानका चमत्कार है। परमतत्त्वके परिचयी इन शब्दोंसे परम-तत्त्वका ज्ञान करते हैं।

इस दोहेमें योगेन्दुदेवने आत्माके सम्बन्धमें तीन बातें बतायी हैं। जो केवलज्ञान स्वभावमात्र अपने आत्मासे परिचित हैं वह विशेषणका शब्द सुनकर ही सब समझ जाता है। प्रथम विशेषणमें कहा है कि यह आठों कर्मोंसे परे है। ओह, वह तो केवल ज्ञानस्वभावमात्र अमूर्त पदार्थ है। उसमें कर्म कहां चिपके हैं ? कर्मोंसे यद्यपि वह है, निमित्तनैमित्तिक योगसे

बन्धन दृढ़ लगा है फिर भी ज्ञानमें ऐसी खबी है कि बंधन से बँधे हुए होकर भी हम बंधनको नहीं निरखते तो अपने ज्ञानमें हम बन्धनसे मुक्त हो गये, उपयोगको और अपने स्वभावको अनुभवने लग जायेंगे।

जैसे आपके घरके तीन चार कमरोंके भीतरके कमरे में तिजोरी रखी है, उस तिजोरीके अन्दर संदूक है, उस संदूकके अन्दर डिबिया है, डिबिया में कपड़ेमें बँधी हुई आपकी हीरा जड़ी हुई अंगूठी रखी है। आप यहां बैठे हैं। जब आपका ख्याल आ गया तो ज्ञान तुरंत अंगूठीमें पहुंच जायगा। उस ज्ञानको न तो दरवाजेके किवाड़ने रोका, और जितने कमरे हैं वे भी बन्द पड़े हैं। आप सब लोग मंदिरमें आ गए, ताला लगाकर आये होंगे। न मोटे किवाड़ोंने रोका, न कमरोंकी भीतोंने रोका, न संदूकने रोका, न डिबियाने रोका। कोई भी उस ज्ञानको रोक नहीं सका। ज्ञानकी ऐसी निर्बाध गति है। जैसे लोकोक्तिमें कहा करते हैं कि जहां न जाये रवि, वहां जाये कवि। उस कविका मतलब ज्ञानसे है। जहां सूर्यकी किरणें प्रवेश नहीं कर सकती हैं वहां भी इस ज्ञानका प्रवेश हो जाता है।

यहां अभी मोटीसी बात कह रहे हैं। सुननेके लिए बिल्कुल साधारण बात है। भगवान् कैसा है? ८ प्रकारके कर्मोंसे रहित भगवान् है। अपने आठ वर्षके बच्चे से पूछो तो वह बता देगा कि सिद्ध उसे कहते हैं जो ८ प्रकारके कर्मोंसे छूट गया है। बात बड़ी नहीं कही जा रही है, मगर सुनने वालोंके, जानने वालोंके ज्ञानका ऐसा चमत्कार है कि छोटीसी बात सुनकर कितना बड़ा महत्वशाली प्रभुस्वरूप नजर में आ लेता है। एक बड़े ज्ञान की बात कहने वाला छोटा आदमी है। पड़ौसका गांवका वह भी शिक्षाका एक वाक्य कहता है, उसे हम सुनते हैं और बाहर गांवसे आये हुए किसी श्रद्धेय पुरुषके मुखसे उससे भी कम शब्दोंमें शिक्षाकी बात सुनते हैं तो हमारे हृदयमें इस श्रद्धेयकी बातका असर होता है और उसका महत्व समझते हैं। यह किनकी कला है? यह सुनने वालेकी कला है, सुनने वाले ने अपना चित्त श्रद्धासे भर लिया तो श्रद्धासे भरा हुआ चित्त होनेसे वह हृदय बहुत कुछ ग्रहण कर लेता है। यह सब अपने स्वरूप, अपने ज्ञानका और सम्यक्भावोंका चमत्कार है।

प्रभु कैसा है? प्रभु ८ कर्मोंसे रहित है। देखो प्रभु गुणगानमें ज्ञानी की कैसी आन्तरिक रुचि हो रही है। जसे जिसको अपनी स्त्रीसे प्रेम है वह स्त्री हो मायके में और वहां का कोई तुच्छ आदमी भी सुसरालसे आया हो तो उस निम्नजातिय के मुखसे भी वह बड़ी उत्सुकतासे बातें सुनना चाहता है वह दामाद। तुम कहां रहते हो, तुम उनके घरके पास ही रहते हो क्या?

तुम्हें आज ससुर साहब मिले थे ? धीरे धीरे स्त्रीकी कुशलताके शब्द भी सुनना चाहता है जिसको कि श्रद्धामें रक्खा है। यह बातें सुनता है और इस व्यक्तिसे भी बड़े विनयसे बोलता है।

उक्त दृष्टान्तमें यह बताया जा रहा है कि छोटेके मुखसे भी बड़ी श्रद्धासे अपनी मन चाही चीजके बारेमें जानना है। इसी प्रकार जिसको आत्मतत्त्वमें रुचि है उस आत्माके पते की बात कोई कहे, चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, उन शब्दोंको रुचिसे सुनना चाहता है। इससे कुछ शब्दोंकी महत्ता नहीं होती। शब्दोंसे हमें क्या प्रयोजन ? पर उन शब्दोंके माध्यमसे हम अपनी अभिष्ट आत्मतत्त्वकी बात सुनना चाहते हैं। इसी लिए आत्मदेव की बातको कहने वाला कोई पुरुष हो वह इसे प्रिय लग जाता है। विशेषतः इसे क्या प्रिय लगा ? अपना आत्मा ही इसे प्रिय लगा। केवल सीधे शब्द बोलें जा रहे हैं। जैन शास्त्रोंमें घुमा फिरा कर शब्दों को बोलनेमें महत्त्व नहीं दिया, फिर भी कोई बड़े शब्दशास्त्रोंका खिलाड़ी हो तो वह अपनी लीलासे एक हाथ से शब्द छटाको भी खेल जाता है। समन्त भद्र स्वामीने जिनशतकस्तुति बनाया है, उसमें करीब १०० श्लोक हैं। वे इतने कठिन हैं और इतने टेढ़टाढ़से चित्रित किये हुए हैं, कोई धनुषके रूपमें, तलवार के रूपमें अनेक चित्रोंसे उन्हें बांधा है, जिसका अर्थ लगानेमें बड़े-बड़े विद्वान् सिर रगड़ते हैं पर उन्हें अर्थ निकालनेकी युक्ति न मालूम हो तो वे अर्थ नहीं निकाल सकते। समन्तभद्र स्वामीने इसमें एक अपना हाथ दिखा दिया। यह भी प्रभुभक्तिकी एक पद्धति है। पर इतने कठिन शब्दोंसे कुछ वर्णन करनेमें उनकी भी रुचि मूलतः नहीं थी। समन्तभद्र स्वामीने बहुत ही सरल शब्दोंमें रत्नकरण्ड नामकी पुस्तक लिखी, उसमें बहुत ही साधारण बातें रखीं। उन्होंने धर्मकी प्राप्तिको, धर्मकी प्रभावनाको बहुत ही साधारण शब्दोंमें लिखा। जिस जमानेमें लोग आडम्बरसे जगतको मोह रहे थे, उस जमानेमें जिनशतकस्तुतिमें समन्त भद्रस्वामीने अपना एक हाथ दिखाया वह भी भक्ति और धर्मप्रभावनाकी उमंगमें। ऋषिजनोंकी आदत बहुत सरल शब्दोंमें सब कुछ बताने की होती है। यहां योगेन्दु देव सीधे वृद्ध महापुरुषों जैसी बात कह रहे हैं।

आजकलकी सभा सोसाइटीमें कोई प्रस्ताव रखना हो तो प्रस्ताव रखा जायगा एक मिनटमें, पर उसकी भूमिका कहनेमें १ घंटा लगेगा। जो बात रखना है समाजमें उसे सब कुछ कह चुकने के बादमें बिल्कुल अंतमें एक या दो मिनटमें रखेंगे। पर बूढ़े आदमियोंको जो बात कहना है पंचों में वहबात वे पहिले ही धर देते हैं। अच्छा ! बात यह है, अब व्याख्या

पीछे करेंगे। तो वृद्ध पद्धतिके अनुसार यहां योगेन्दु आचार्य देव सीधे शब्दोंमें कह रहे हैं कि आत्मा ८ कर्मोंसे रहित है। शब्द दो तीन हैं। कला कौशल जानने वालेका है, सुनने वालेका है, वह वहां तक पहुंचता है। ह आत्मया ८ कर्मोंसे रहित है, ऐसा कहने से यह बात तो अपने आप आ गई कि शरीरसे भी रहित है, कुटुम्बसे भी रहित है और घरसे भी रहित है। मरने पर जो चीजें साथ जाती हैं उनसे जब रहित बता रहे हैं तो जो मरने पर साथ नहीं जातीं उनसे रहित है, यह बात तो अपने आप ही आ गई। उसमें ज्यादह क्या दिमाग लगाना।

यह आत्मा मिथ्यात्व रागादिक भावकर्मरूप सर्वदोषोंसे जुदा है, लो यहां बतला रहे हैं कि जो आत्माकी परिणतिरूप भी है ऐसे राग द्वेषों से भी यह आत्मा दूर है, भगवान् जिनेन्द्र देवकी बातोंको भी सुनकर श्रद्धा में यह बात कह रहे कि हमारा तो यह घर है, इतनी दालान वाला है, इतने लोग हमारे घरमें रहते हैं। तो इसको क्या कहा जाय? इसने अपना हर जगह ऊधम मचा दिया है। एक नगरमें एक बादशाह था। सो वह चला जा रहा था। रास्तेमें एक गडरियाकी लड़की उसे पसंद आई, तो उसका विवाह कर लिया। उस गड़रियाकी मोड़ीको बहू बनाकर, रानी बनाकर अपने घर में रखा। अब जो उसके लिए कमरा दिया गया था वह बड़ा सजा हुआ था। चारों तरफ फोटो लगे हुए थे। राणा प्रतापका और-और भी बहादुर लोगोंके फोटो लगे हुए थे। उनमें एक फोटो ऐसा भी था जिसमें गडरियेका बच्चा भेड़ बकरी चरा रहा था। अब वह लड़की सिलसिलेसे सब फोटो देखती जाती। मानो उन फोटोंमें कुछ सार नहीं है और जहां उस गडरियेके सुन्दर बच्चे को भेड़ बकरी चराते देखा तो गडरिये की मोड़ी बोलने लगी, टिट्ट-टिट्ट। वहां उसका मन लग गया कैसे सुन्दर महलमें वह विराजी है, रानी बनकर आई है और उसका मन कहीं नहीं भरा। मन भरा तो भेड़ बकरीके बच्चों पर।

इसी तरह आचार्यदेव इतनी मर्मभेदी बात तो बता रहे हैं कि जो तेरे आत्माकी ऐसी परिणति हो रही है, राग द्वेषरूप उससे भी तू रहित है। इतने बड़े सुन्दर-सुन्दर वचन तो सुन रहे हैं और बीच-बीचमें ख्याल आ जाये घरका तो आप लोग क्या कुछ कम रहे?

यह आत्मा मिथ्यात्व रागादिक भावकर्मरूप समस्त दोषोंसे रहित है। दूसरी बात यह कही जा रही है। यहां अब एकदम पतेकी बात कहना है कि वह दर्शन ज्ञान चारित्रमय है। शुद्ध उपयोगका अविनाभावी निज शुद्ध आत्माके सम्यग्दर्शन और ज्ञान और चारित्रसे रचा हुआ यह आत्म-

तत्त्व है। असलमें आत्मामें पाया क्या जाता है ? इसको परमार्थस्वरूपसे देख रहे हैं, जिससे मेरी सत्ता बनी है। जो मेरा निजी असाधारण अहेतुक स्वरूप है उस स्वरूपमें स्वरूपकी बात देखी जा रही है। इस लोकके अन्दर आनन्द किस चीजमें है ? निर्णय करके बतावो। सब पागलपन है, जो यह श्रद्धा लिए हुए होगे कि धनमें आनन्द है, परिवारमें आनन्द है, इज्जतमें आनन्द है तो ये सब इन्द्रजाल हैं, मायामय हैं, इनके कोई सम्बन्ध नहीं हैं, बल्कि इनसे आपत्ति हैं, क्षोभ हैं, संसारमें रुलानेकी जड़ हैं। किस जगह आनन्द है ?

अरे भैया ! जरा शांत होकर अपना आराम पाकर विश्रामसे रहकर अपनी ओर तो आवो। सर्वदोषोंसे रहित अविकारी अहेतुक ज्ञानघन आनन्दमय प्रभुकी दृष्टि तो करो। सब जगह देखभाल लो। आत्माके दर्शन जैसा आनन्द कहीं भी नहीं है। काहेको भ्रम करते हो ? करोड़पति आदमी पागल बन रहे हैं तो बन लेने दो, उनकी हौंस न करो। लखपति आदमी यदि कोई मस्त हो रहे हों तो उन्हें मस्त होने दो, उन सबको दयाका पात्र समझो। जिसके अज्ञान लदा हो वह दयाका पात्र है। दयाका भण्डार ज्ञानी पुरुष होता है। वही मूलसे दयाकर सकता है। यह ज्ञानमय आत्मतत्त्व रत्नत्रयमय है। ऐसी आत्माको हे भव्य पुरुष ! तुम निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर भावना करो।

यह ज्ञानस्वरूप तो हो गया आत्माका स्वरूप, किन्तु उस आत्माके पानेका उपाय क्या है ? साधन क्या है ? तो जैसे नमककी डली चोंचमें रखने वाली चींटीको शक्करका स्वाद लेनेका उपाय क्या है ? मुंह खाली करदे, नमककी डलीको फेंक दे और फिर स्वाद ले, शक्करके बोरे पर तो आ ही गई है। अब इतनी ही तो कसर है कि पहिले से रखी हुई डलीको छोड़ दे और साफ चोंचसे उस शक्करका स्वाद ले, इतना ही तो करना है। इस प्रकार इस बने बनाए परिपूर्ण आत्माको और कष्ट करना ही क्या है ? अपने विकासके लिए या परमात्मस्वरूपको पानेके लिए ? यह तो स्वरूपसे ही केवल ही है, कुछ उसे करनेकी आवश्यकता क्या है ? परमात्मा है ही, परिपूर्ण है ही, स्वरसतः ज्ञानमात्र है ही। बस करना यही है कि विभाव परिणामोंको जो कि उपयोगमें गृहीत हुए हैं, देखे गये हैं, सुने गये हैं, अनुभव किये गये हैं, जिनके भोगनेकी इच्छा बनी है। निदान बंधका बंधन है ऐसे समस्त विषय कषायरूप परिणामोंको त्यागना है। त्याग करके फिर इस आत्माकी भावना भावो।

भैया ! सर्वपदार्थ खुदगर्ज हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थकी

परवाह नहीं करता है। वस्तुका स्वरूपही ऐसा है तो यह जीव भी, मनुष्य भी ऐसा खुदगर्ज है, अपनी ही अपनी बातें चाहता है। दूसरोंके सुख आरामकी कुछ मनमें बात नहीं लाते तो कोई दोष नहीं है। ठीक है मगर तुम खुदगर्ज भी तो पक्के बनो। इस पराये शरीरको मान लिया कि यह मैं हूं और इस पराये शरीरकी ही खुदगर्जी कर रहा है तथा इसके कामके आगे दूसरोंकी परवाह नहीं रखता है। तो अभी वह पक्का खुदगर्ज कहां बना है। पक्का खुदगर्ज बन जाय तो वह भी प्रशंसाके योग्य है। मगर यह अधिकतर खुदगर्ज है सो यह प्रशंसाके योग्य नहीं है। इन परिणामोंको विभावोंको त्याग करके आत्माकी भावना भावो।

इस दोहेमें कहा गया है, दिखाया गया है कि निर्वाण सुख ही उपादेयभूत है और निर्वाण सुखसे भिन्न समस्त द्रव्य कर्मभावोंसे भिन्न जो यह शुद्ध आत्मा है, केवल निजस्वरूप मात्र जो आत्मतत्त्व है वह ही अभेदरत्नमयरूप परिणमते हुए भव्य जीवोंको उपादेय है। इस प्रकार तीन प्रकारकी आत्माका प्रतिपादन करने वाले इस प्रथम महाधिकारमें पृथक्- पृथक् स्वतन्त्र भेदभावनाके इस स्थलमें ६ दोहोंमें इस आत्माके स्वरूपकी चर्चा की गई है।

अब निश्चयसे सम्यग्दृष्टि कौन है ? इस आशयको मनमें रखकर यह दोहा कहा जा रहा है।

अप्पिं अप्पु मुणंतु जिउ सम्मादिट्ठि हवेइ।
सम्मादिट्ठिउ जीवऽउ लहु कम्मइँ मुच्चेइ ॥७६॥

जो आत्माके द्वारा आत्माको जानता है -वही जीव सम्यग्दृष्टी होता है। सम्यग्दृष्टी जीव क्षणमात्रमें कर्मोंसे छूट जाता है। जो केवल अपने स्वरूपतत्त्वको आत्माके द्वारा जो अनुभवता है, वह वीतराग सम्यग्दृष्टी है। इस लोकमें धन, राज्य, अनाज, सोना, चांदी, इज्जत सब चीजें सुगम हैं, इनका कुछ भी मूल्य नहीं है। यों ही मुफ्त मिली हैं और यों ही चली जायेंगी। किन्तु अपने स्वरूप सम्बन्धमें और सभीके स्वरूपके सम्बन्धमें सच्चा ज्ञान हो जाय यह बहुत अमूल्य बात है। यह मैं आत्मा स्वरसतः कैसा हूं ? ऐसा इस शुद्धज्ञानस्वभावका निर्णय जिसके हो तो उससे बढ़कर कोई शाह नहीं है। मिट जाने वाली विनाशीक वस्तुयें हैं। ऐसा नखरा किया जाना यह मात्र व्यामोहकी बात है। ऐसे केवल निज शुद्ध आत्माको कब अनुभवा जा सकता है जब वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही स्वयं परिणति होती है। सबमें ज्ञानका ही खेल है। ज्ञानमात्र ही यह हम हैं और और ज्ञानकी ही लीलामें सुख दुःख आनन्ददृष्टि है, सब कुछ फैसला इस

ज्ञानदृष्टिके ही भरा हुआ है।

जो जीव केवल अभेदरूप सनातन शुद्ध ज्ञानस्वरूपमात्र अपनेको निरखते हैं वे सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणादिक कर्मोंसे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं। जो समागम मिला है उसमें भी जितना अधिक बाधक अचेतन नहीं हैं उतना बाधक चैतन्य पदार्थ है। बड़े-बड़े महापुरुषोंने भी अन्य चैतन्य पदार्थोंके चक्रमें आकर अपनी परेशानी उठाई। अचेतन पदार्थोंसे तो कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता कि उतना राग उनमें बढ़ता चला जाय किन्तु इन चेतनपदार्थोंकी ओरसे इसकी प्रेरणा होती है। ये चेतन पदार्थ रागभरे सुहावनी बोलीसे पेश आते हैं। तो यह भी मूढ़ उनके वचनोंको सुनकर उनके लिए ही अपना सर्वस्व सौंप देता है। चेतन पदार्थोंके समागमसे इस आत्माका महात्म्य घट गया है। कुटुम्ब, परिवारके मोहमें यह मिथ्यादृष्टिजीव ऐसा पगा रहता है। कि घरके उन चार छः जीवोंसे लगाव रहता है और जीवोंमें रंच भी दृष्टि नहीं रहती। पर मोहसे कुछ पूरा नहीं पड़ता है। इतनी बड़ी जिन्दगी व्यतीत हो गई, कोई ५० वर्षका, कोई ६० वर्षका है। इन बीते हुई क्षणोंमें क्या क्या नहीं स्वप्न सोचा ? क्या-क्या नहीं किया ? अपनेको कुछ न समझकर अपना सर्वस्व सब परिवारके लिए सौंप देने पर उसके फलसे आज कुछ लाभ आत्मामें दीख रहा है क्या ? इस आत्माके भीतर कितना वैभव बढ़ गया है ? कितना ऊँचा उठ गया है ? कुछ निरखो तो सही। कुछ नजर नहीं आता।

अहो इस जीवने केवल शुद्ध आत्मतत्त्वका परिज्ञान न होनेसे जगह जगह संकट भोगा है। दृष्टि उदार बनावो। अपना तन, मन, धन, वचन अनित्य समझकर, जब जैसा सामने प्रकरण देखा हो, उत्तम बात उसमें उपयोग करनेसे मत मुरको। सम्भव है अपनी सारी जायदाद भी परोपकार में लगादी तो पता नहीं कलके दिन कौनसी विधि ऐसी बैठ जायेगी कि यह कोटा पूरा हो जायगा, पर कई दिन तक बासी रोटी झोलीमें भरे हुए भिखारीकी तरह इस मोही जीवको सत्य बातका विश्वास नहीं होता। कोई सेठ इस भिखारीसे कहे कि तुम इन बासी रोटियोंको कूड़ामें डाल दो, तुमको ताजी पूड़ियां खिलाएँगे, पर भिखारीको विश्वास नहीं होता है। क्योंकि बड़ा परिश्रम करके तो ये रोटियां कमाई हैं और इन्हें यों ही कूड़ेमें डाल दें तो पता नहीं यह सेठ जो कह रहा है सो वह खिलाए या न खिलाए। इसी तरह उन मोही जीवोंको तन, मन, धन, वचनके कम करनेमें इतनी कंजूसी होती है कि यह मोही जीव अपने मोहके कुटेवसे हटकर साधर्मी जनोंमें अपना सर्वस्व नहीं सौंप सकता है। सर्वस्व सौंप दिया

स्त्रीको, पुत्रोंको।

भैया! जगतके इन अनन्त जीवोंमें ये दो ही प्राणी तेरे कुछ हैं क्या? वे तो अपने स्वरूपसे अत्यन्त जुदा हैं। पर मोहमें ज। कि आत्मज्ञान ही व्यवस्थित नहीं रह पाता तो बस एक-दोमें ही अपना अंधेरा बनाए हुए है। अपना वैभव, व्रत, उपवास, संयम सब कुछ आत्मस्वरूपके अनुभव के लक्ष्यसे करो। अन्य किस बातके लिए तीन-तीन रत्नत्रयके उपवास कर डालते हो? किस प्रयोजनके लिए दस लाक्षणी जैसे पर्वमें एक बार खानेकी उपवास करनेकी हिम्मत कर डालते हो? किस प्रयोजनके लिए इतने कष्ट सह रहे हो? परका संग जुड़ भी जाय तो मिलेगा क्या? मान लो करोड़पति हो गये तो इस भवमें स्वार्थी, धनके इच्छुक, मायावी पुरुषोंके द्वारा कुछ शब्द बोल दिए जायेंगे सो उन बोलने वालोंने उसके परिणामोंसे शब्द नहीं बोला किन्तु उन्होंने अपने कषायोंके वशीभूत होकर शब्द बोले हैं। कोई किसीका कुछ नहीं है? एक निर्णयपूर्वक चित्तको समाधानमें करलो कि अणु-अणु तक भी मेरे कुछ नहीं है।

यह वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणादिक कर्मोंसे बहुत शीघ्र छूट जाता है। जिस कारणके द्वारा सम्यग्दृष्टि पुरुष कर्मोंसे शीघ्र मुक्त हो जाता है उस कारण को तो देखो। कैसा अछूता है इस ज्ञायक स्वभावरूप कारण, जिसका ज्ञानी संत जीवोंने उपयोग किया। जो मुक्त होते हैं, जो सम्यग्दृष्टि होते हैं जिस कारणका उपयोग करके जीव निर्वाणको पहुंच गए हैं उस कारणको तुम उपादेय मानों। जगत्में सब चीजें निस्सार हैं। एक अपने आपका जो सहजस्वरूप है उसकी दृष्टि ही एक सारभूत है। बाकी सब असार हैं। असकारणके अनुकूल बनों। इस मोहमें जिनसे मोह हुआ उनसे कितनी ही तो बातें सुनों, गाली दीं, अपमान करते हैं, सब सह लेते हैं। उनके अनुकूल ही यह मोही जीव काम करता है। जिस बातमें ये खुश हो सकते हैं वैसा ही यह कर रहा है। पर अपने इस चैतन्यमहाप्रभुके अनुकूल तो कुछ चलो। यह मेरा भगवान् कैसे खुश रह सकता है? कुछ पता है? विषयभोगोंके प्रसंगमें तो यह दुःखी रहता है, क्षुब्ध रहता है, पर इस कुटेब ने अज्ञानने इस प्रभुकी विपदाओं को कुछ नहीं गिना। जैसा मोह का आर्डर हुआ तैसा ही यह अपनेको बना लेता है।

ये विकल्प ये विभाव सब जंगल हैं। इनमें भटका हुआ प्राणी लोकमें क्लेश ही पाता है, सो वीतराग निजज्ञान स्वभावके अनुकूल शुद्धआत्माके अनुभवकी अविनाभावी इस वीतराग सम्यक्त्वकी भावना करो। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने भी मोक्षप्राभृत ग्रन्थ में निश्छल चरित्रका लक्षण कहा है कि

जो उत्तम निजद्रव्यमें रहता है वह नियमसे सम्यग्दृष्टी जीव है। यह जीव कुछ न कुछ अपना उपयोग बनाए रहता है। मैं शुद्ध सहज ज्ञायकमात्र हूं— इस प्रकारका जिसने उपयोग बनाया वे तो कुछ पार पायेंगे और जिसने पर्यायोंको ही यह मैं हूं ऐसा उपयोग बनाया वह संसारमें ही रुलता रहेगा। जो सम्यक्त्वसे परिणति पुरुष हैं वे आठ कर्मोंका क्षपण करते हैं।

भैया ! एक कहावत है कि कुम्हारीसे न जीते तो गधीके कान मरोरे। कोई कुम्हार था तो उसकी कुम्हारिन बहुत बातूनी और काममें चतुर थी। कुम्हारकी उसके आगे कुछ नहीं चला करती थी। सो एक बार बातों बातों में ही दोनोंमें झगड़ा होगया। कुम्हार कुम्हारिन से जीत न सका, गुस्सा तो तेज आ ही रहा था सो पासमें बंधे हुए गधे के कान जाकर ऐंठ दिया। आखिर अपनी गुस्सा तो भजाना ही था। कुम्हारिन पर बस न चला तो गधीके कान मरोरे। इसी तरह इस मुग्ध आत्माका अपने आपपर बस नहीं चलता है। जैसा मनने बहकाया वैसा ही यह बहक जाता है। परपदार्थोंकी हठ विकल्प कर रह जाता है। मनमें आया कि हमें तो अभी आज ही उड़द की दालके पापड़ खाना है तो झट घरमें हल्ला मचा दिया कि अभी बनावो, जल्दी बनाओ। ऐसी ही परद्रव्योंमें हठ किए हुए हैं। अपने आपके मन पर वश नहीं चलता है, किस बात पर गुस्सा हो रहे हो ? जरा अपने मनको वशमें कर लो फिर दुनियामें गुस्साके लायक कोई बात ही न मिलेगी। दूसरों को कुछ सुधारने परिणमाने के विचारके एवजमें अपने आपको सुधार लेने का यत्न करो।

धनी होनेका दुनियावी प्रयोजन तो यह है कि दुनियांको बताना है कि हम ऐसे हैं। लौकिक विद्यावोंके पढ़ानेका प्रयोजन तो यह है कि लोगों को बता दो कि मैं ऐसा हो गया हूं। पर धर्मधारण करनेका क्या प्रयोजन निकलता है ? दूसरोंको यह जाहिर करना है कि देखो मैं ऐसा व्रती हूं, पुजारी हूं, धर्ममें लगा हुआ हूं, नहीं, धर्मधारण करनेका फल अन्तरमें गुप्त ही गुप्त होना है। जब हमें कोई बात धर्मके फलमें गुप्त ही प्राप्त रहेगी तो फिर धर्मके बनावट दिखावटसे क्या कुछ सिद्धि है ? कुछ भी सिद्धि नहीं है। पर पुण्यका उदय है, ठाठ बाट सामने है, सारी व्यवस्थावोंकी सुविधा है तो अपनी ही बुद्धि अपनी ही स्वार्थकी साधना में रहते हैं और जैसा मनने चाहा तैसा दूसरों पर सितम ढाते रहते हैं। कौन समझाने वाला है इस मोही जीवको ? यह अपने आपके मदरसमें मतवाला होकर स्वच्छन्द उद्दण्ड चल रहा है, इसे कौन समझाने वाला है ?

एक कूजड़ी थी। कूजड़ी जानते हो कौन जड़ी ? भिण्डी की जगह

भिण्डी, तुरई की जगह तुरई। एकसे फल एक जगह रखे हैं। इन्हें किसने जड़ा ? जिसने जड़ा हो वही कूजड़ी। वह बाजारमें बैठी थी। साग भाजी बेंच रही थी। कूजड़ीकी लड़की भी उसके पास बैठी थी। वहांसे एक बादशाह निकला तो उसका चित्त हुआ कि शादी तो इस लड़कीसे होनी चाहिये। बादशाहने मंत्रियोंसे कहला भेजा कि कूजड़ी अपनी लड़की की बादशाहसे शादी करावे। मंत्रीने उसे समझाया तो वह कहती है अबे भडुवेके भडुवे जा। भडुवा क्या कहलाता है हमें नहीं मालूम। अगर कोई बुरी बात हो तो हम नहीं समझा सकते। फिर बादशाहने किसी और मंत्रीको भेजा कहा उस कूजड़ीको समझादो कि बादशाह तेरी लड़कीसे शादी करना चाहता है सो कर दे। उस मंत्रीके लिये भी उसकी भडुवा भडुवेकी बोली थी। बड़े बड़े लोगों ने समझाया पर न मानी। एक सिपाही बोला महाराज हम तुम्हारा काम बना देंगे। बादशाहने कहा अच्छा बना दो। सिपाही गया। जाकर कुछ बोला नहीं, कूजड़ीकी चोटी पकड़कर घसीटा और लात, घूंसा, मुक्का मारा। कूजड़ी कहती है कि बतावो तो क्या बात है ? जब मरम्मत हो गई तो कहा कि तुझे अपनी लड़की की शादी बादशाहसे करानी है, कूजड़ी कहती है कि कोई भडुवाका भडुवा ऐसा समझा जाता तो पहिले शादी कर देती। पर मुझे यों किसीने नहीं समझाया। तो नम्र शब्दोंमें वह कूजड़ी समझने वाली थी क्या ? पुण्यके ढाढोंसे, अच्छी सुविधावोंसे क्या यह मन समझने वाला है ? इसको तो संकट चाहिए, तकलीफ चाहिए तब जाकर मन ठिकाने लग सकता है।

भैया ! सुखसे रहें, पैर पसार कर सोवें, दूसरोंका उल्लू बनाएँ, हमारे तो ठाठ बाठ आराम पूरा है। मरे गरीब। ऐसे आरामसे मनको रखा तो यह मन समझने वाला नहीं है, इसको चाहिए काम और काममें आते हैं संकट और संकटोंको सहनेकी हिम्मत हो तो वह पुरुष उन्नति कर सकता है अन्यथा जो जहां है वहांसे भी नीचे पहुंच जायगा। जो सर्वविकल्पोंको भूलकर अपने प्रशस्त आत्मतत्त्वमें ही रत रहता है, ऐसा संयम नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है और निश्चय सम्यक्त्वकी परिणति होनेसे यह सम्यग्दृष्टि जीव इन दुष्ट ८ कर्मोंका क्षय कर देता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवका वर्णन करके अब मिथ्यादृष्टि जीवका लक्षण बताते हैं—

पज्जयरत्तउ जीवडउ मिच्छादिट्ठि हवेइ।
बंधइ बहुविह कम्मडा जे संसारु भमेइ ॥७७॥

जो अपनी पर्याय में आसक्त है वह जीव मिथ्यादृष्टि कहलाता है। यह मिथ्यादृष्टि जीव अपने मिथ्यात्व के कारण नाना प्रकारके कर्मोंको बांधता

है और संसारमें परिभ्रमण करता रहता है।

इस मोही जीवको जो शरीर मिला, जो परिणाम मिला उस ही में यह आसक्त रहता है। कहां तो इस जीवका कार्य था कि निज शुद्धपरमात्म-तत्त्व में रुचि करे और कहां यह परपदार्थोंमें रुचिका अभिप्राय बनाए फिरता है। सो यह फुटबाल जैसे ठोकरें खाता फिरता है। जैसे फुटबाल जिस लड़के के पास पहुंचता है, मुझे कोई शरण रख ले, पर शरण कोई नहीं देता सब लातसे ढुलका देते हैं। जिस बालक के पास फुटबाल पहुंचता है वह उसमें कसकर लात लगाता है, फिर जिस बच्चे के पास पहुंचा कि भैया अपनी गोदमें हमें रख लो, वह हाथ से भी नहीं छूता, पैरोंसे ही ठोकर लगाता है। यह फुटबाल जिस जिसकी शरणमें जाता है वहांसे ही ठोकर मिलती है।

यह मोही जीव जिन-जिन पदार्थोंकी शरणमें जाता है, तुम मुझे सुख दो, तुम मुझे सुख दो, जिसकी शरणमें यह मोही जाता है, वहां से ही यह फटकारा जाता है। फटकारता नहीं है कोई। यह मोही जीव अपनेमें नाना ख्वाहिशें लिए हुए है, इच्छा लिए हुए है, सो जितनी इच्छा यह लिए हुए है उनकी पूर्ति तो हो नहीं सकती क्योंकि किसी जीवका क्या अधिकार है पर वस्तुपर कि जैसा वह चाहे तैसा परवस्तुका परिणमन हो जाय। चाहते हैं और तरहसे और उन पदार्थोंका परिणमन होता है और प्रकार से। यह जीव परिणमता है कुछ विचारसे तो यह समझ रहा है कि मुझे इसने सताया। इसने पीड़ा दिया, इससे संकट मिले— ऐसा ही समझ रहे हैं और दुःखी हो रहे हैं। जिन-जिन पदार्थोंकी शरणमें जाता है यह मोही जीव उन-उन पदार्थोंसे ही कोरा जवाब इसे मिलता है।

भैया! तुम्हारा और इन परपदार्थोंका साथ कैसे हो सकता है? तुम्हारा तो तुममें ही काम हो रहा है, तुम्हारेसे बाहर लेशमात्र भी तुम्हारी परिणति नहीं होती। जितनी पीड़ा द्वेषमें है उससे भी कई गुणा पीड़ा राग में है। पर रागमें अंधा पुरुष अपनी पीड़ा को मानता नहीं है। जब फल मिलेगा अगले भवमें तब इसकी अक्ल ठिकाने लगेगी। यह मिथ्यादृष्टि जीव अपने मिथ्यात्वके कारण संसारमें रुलता है। मिथ्या, वितथ, व्यलीक, असत् ये सब एक ही अर्थ रखते हैं। मिथ्यात्वमें वे सब ऐब आ जाते हैं जिनसे सम्यक्त्वके दोष बताए हैं। रागी देवोंको देव माना, आरम्भी, परिग्रही, विषयासक्ति, गंजेड़ी, भंग घोटने वाले, अफीमची, मस्त रहने वाले पुरुषोंको साधु मानकर अपने को धर्मात्मा समझ लिया, यह सब मूढ़ता है। लोग कैसी प्रवृत्ति करते हैं? उसकी नकल करना और उस नकलमें

धर्म मानना सो भी लौकिक मूढ़ता है।

कोई संन्यासी भिक्षा लेकर जा रहा था। रास्तेमें एक जगह उसकी झोलीमें से पेड़ा गिर गया। वह पेड़ा खोटी जगह पर गिरा। बहुत दिनों में तो भिक्षामें पेड़ा मिला था। सो वह उस पेड़ेके मोहको न रोक सका। झट उसने उस पेड़ेको उठा लिया और उसे पोंछकर झोलीमें डाल लिया। चूँकि अयोग्य काम किया है सो चारों तरफ देखता है कि किसीने देख तो नहीं लिया। उसे मालूम हुआ कि किसीने देख लिया तो उसने ऐब छिपाने को झोलीमें बहुतसे फूल थे उन फूलोंको फैला पर डाल दिया, जिससे लोग यह समझें कि यह अपना पेड़ा उठाने के लिए नहीं झुका था, यहां कोई देवता है सो उनके चरण छूने के लिए झुका था, तभी तो फूलोंकी वर्षा कर दी। कुछ लोगोंने देखा तो पाससे ही फूल तोड़कर ले आए और उसी जगह डाल दिया, नमस्कार कर लिया। वहां माना गया देवता क्या था? जिस को सूकर खाता है। अब औरोंने देखा तो वे भी बगीचेमें गए, वे भी फूल तोड़कर लाए। उन फूलोंको चढ़ाया उसी जगह और नमस्कार किया। अब तो देखो वहां फूलोंका ढेर लग गया। किसी बुद्धिमान्‌ने सोचा कि ये लोग फूल किसको चढ़ा रहे हैं? देखें तो सही। फूलोंको हटाया, सब फूल हट गए तो निकला वहां क्या? ऐसे ही न जाने कितने देवता बन गए हैं? किस-किस प्रयोजनसे बन गए हैं? अरे देव तो एक वही है जो रागद्वेष रहित हो, नामसे क्या मतलब? कोई हो। जो रागद्वेष रहित हो, ज्ञानसे परिपूर्ण हो वही हमारा देवता है।

हम यदि ज्ञानकी पूजा करें तो परमात्माको पूज लिया समझ लीजिये। नामसे क्या है? जिसका नाम है वह भगवान् नहीं और जो भगवान् है उसका नाम नहीं। वीर प्रभुको जब तक महावीरकी निगाहसे देखते हो तो ऐसा लगता है कि यह किसीका लड़का है, ऐसा सुहावना है, इतना बड़ा है, घर छोड़कर चल दिया, यह ही देखोगे। पर यह तो भगवान् नहीं। भगवान् तो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप अनन्त गुणमय है। जो शुद्ध केवल ज्ञानमय है, उस प्रभुका तो कोई नाम ही नहीं है। ये वीर हैं, ये ऋषभदेव हैं, ये चन्द्र प्रभु हैं। क्या उस ज्ञानमय प्रभुका कोई नाम है? जब तक नाम की दृष्टि है तब तक भगवान् का मर्म पहिचाना नहीं जा सकता। और जहां भगवान्‌के मर्ममें पहुंच गए फिर नामसे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया।

देव तो एक ही प्रकारका है रागद्वेषरहित ज्ञान पिण्ड। सार इतना ही है कि ऐसे ज्ञानमय अपने आपकी उपासना करो और ऐसे जो आत्मा होते हैं उनकी उपासना करो। मोहसे कुछ नहीं मिलेगा, पर प्रभुभक्तिसे,

गुरु उपासनासे कुछ हाथ भी लगेगा। अभी अनन्तकाल आगे पड़े हैं। इन १०-५ वर्षोंको ही सब कुछ न समझलो। यहां यह बतलाया है कि जो निश्चय सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं वे क्षणमात्रमें ही इन दुष्ट कर्मोंका विनाश कर देते हैं, जिस ज्ञानसे कर्म खिरते हैं वह ज्ञान ही हम आप को उपादेय है।

यहां यह प्रकरण चल रहा है कि मिथ्यादृष्टि जीव किसे कहते हैं? उसका सीधा लक्षण है कि जो पर्यायमें अनुरागी है, पर्यायोंको ही अपना सर्वस्व द्रव्य समझता है उसको मिथ्यादृष्टि कहते हैं। अब जरा पर्यायोंपर दृष्टि तो दें कि हमारी कौन-कौन सी पर्यायें हुआ करती हैं जिनमें हम मुग्ध हो जाते हैं, जिनके मोहवश हम संसारमें रुलते फिरते हैं। जीवों पर सबसे बड़ा संकट है तो यह है कि नाना शरीरोंको धारण करता फिरता है। आज मनुष्य हैं, मनुष्य मिट जाये, पशु हो गए, पक्षी हो गए, कीड़े मकौड़े हो गए, पेड़ होकर फैल गए तो इसकी क्या दुर्दशा होती है सो आंखोंसे देख लो। ये सूकर फिरते हैं क्या खाते हैं? कहां रहते हैं? जगह-जगह लोटते हैं, फिर भी पर्यायोंमें ही आसक्त हैं। ऐसी निम्न दशा तो हम आपकी अभी नहीं है। यदि सुयोगसे आज मनुष्यभव मिला है तो जल्दी रत्न लूट लो, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्रका। ये रत्न लुट जायेंगे याने इनको न पा सकेंगे फिर कठिन पड़ेगा।

भैया! जिनमें मोह करते हो ऐसे ये परिवारके लोग कोई साथी हैं क्या? अरे साथी हैं तो दुःखी करने के लिए, पीड़ित करने के लिए साथी हैं। उनसे शांति आराम नहीं होती है। यही अनुभव करलो, प्रभुके गुणों का अनुराग करलो, साधु सत्संग करलो, कितने ही क्षण, फिर देखो कितना आनन्द मिलता है? और घरमें पहुंच कर बच्चोंकी किलकिलाहट में, चिंतावोंमें देखो और साधु सत्संगमें रहकर देखो कितना फर्क है? जहां आनन्द मिलता है वहां जावो, जिनसे पीड़ा मिलती है उनसे मेल मत करो। हां तो आत्माकी कैसी-कैसी पर्यायें होती हैं? यह आत्मा तो मात्र ज्ञानस्वरूप है, आकाशवत् अमूर्त है। जैसे यह सर्वत्र आकाश जो फैला हुआ है इसमें न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न आकार है, न पकड़ा जा सकता है, न छेदा जा सकता है, न भेदा जा सकता है। इस प्रकार अमूर्त गुणोंका यह आत्मा भी अमूर्त है।

भैया! अन्तरमें दृष्टि देकर तो देखो इन चर्मचक्षुवोंको बन्द करके अन्तरमें तो कुछ निहारो, इस शरीर को भी भूलकर कुछ अपने में प्रविष्ट होकर बहुत अन्तर मर्मकी बात तो निहारो कि यह मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं, अमूर्त हूं। यह मैं न छेदा जा सकता, न भेदा जा सकता, न पकड़ा जा

सकता। इसे किसीने जकड़ा नहीं है। इसे कोई बंधनमें ला नहीं सकता। हम खुद अपनी कलाको भूलकर भ्रममें आ जाते, खुद ही फंस जाते। नहीं तो जैसे स्वतंत्र विचरने वाले सर्पोंका बंधन क्या, स्वतंत्र विचरने वाले जंगली हाथियोंका बंधन क्या किन्तु वे भी जब इन्द्रियों के विषयोंका मोह हो जाता है तो शिकारीके चंगुलमें फंस जाते हैं। तुमको कोई जकड़े नहीं, कोई सोचे कि मेरी गृहस्थी कच्ची है, छोटे-छोटे बच्चे हैं, स्त्री है, कितना धन है, इतना यह धन कमाया है अब किसे छोड़कर रहा जाय। इन सबने तो मुझे बांध रखा है। आप यह निश्चय समझो कि इस शरीर तक से भी आपका सम्बन्ध नहीं है। परिवारकी बातें तो छोड़ दो किन्तु शरीर मैं हूं, यह देह मैं हूं, इस रूप मैं हूं, इस तरहका विश्वास किया तो बन्धन लग गया। और जब परिवारसे आत्मीयता की कि ये मेरे बच्चे हैं, इस जातिकी बुद्धि उठी तो बँध गया। वे पर्यायें क्या क्या हैं जिनमें हम अनुरागी होते हैं तो बंध जाते हैं। यहां कोई मनुष्य बने, कोई नारकी बने, कोई तिर्यञ्च बने, कोई देव बने, इन पर्यायोंमें ही सब आसक्त हैं।

एक राजा साधुके पास बैठा था। बोला महाराज! हम मर करके क्या बनेंगे? उसे तो गर्व था कि हम राजा हैं, मरकर कोई देव ही होंगे। और ये साधु महाराज वही बतायेंगे। उसने अवधिज्ञानसे जानकर बताया कि अमुक वर्ष, अमुक माहमें, अमुक दिन, अमुक जहग पर तू मरकर विष्टाका कीड़ा बनोगे। यह सुनकर बड़ा दुःखी हुआ। घर आया तो अपने बच्चोंसे कहा, देखो बेटा हम अमुक वर्षमें, अमुक माहमें, अमुक दिन, इतने बजे अमुक स्थानमें हम विष्टाके कीड़ा बनेंगे। सो हमें तुम आकर मार डालना मैं राजा और विष्टाका कीड़ा बनकर रहना चाहूं यह ठीक नहीं। बहुत अच्छी बात। आया वह समय। वह गुजर गया और मरकर उसी समय विष्टाका कीड़ा बन गया। अब वह राजपुत्र पहुंचा जहां वह कीड़ा था। उसे मारने लगा तो वह कीड़ा विष्टामें जल्दी घुस गया। राजपुत्र साधुके पास पहुंचा, बोला महाराज पिताजी ने तो यह कहा था कि मैं मरकर कीड़ा बनूँगा। सो मुझे मार डालना। पर जब मैं मारने गया तो वह कीड़ा विष्टामें ही घुस गया। साधुजी बोले हे राजपुत्र! इस जीवकी ऐसी ही गति है। जिस शरीरमें यह पहुंचता है उस शरीरमें ही यह मुग्ध हो जाता है।

भैया! सिवाय मोहके और दुःख ही क्या है? बतलावो कितने बड़े सौभाग्यकी बात है कि ऐसा शासन पाया है, ऐसा धर्म पाया है हम आपने कि जहांके शास्त्र, जहांके संत, जहांकी प्रक्रिया पवित्र है, जहांके आराध्य देवकी मूर्तिसे सर्वत्र वीतरागता ही टपकती है और संसारके संकटोंसे सदा

के लिए छुड़ा देने वाली देसना मिलती है। जरा तत्त्वज्ञान करते जाइए, ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ेगा त्यों-त्यों इन गुरुदेवोंके प्रति आप उछल-उछल कर गद्‌गद्‌ होकर भक्तिके शब्द बोल उठेंगे। यदि होता मैं कुन्दकुन्दमहाराज के समयमें, यदि होता मैं अमृतचन्द्र सूरि व समंतभद्र महाराजके समयमें तो मैं उनके चरणोंमें लेटकर अपनेको धन्य मानता। अमृत ही अमृत भरा हुआ है इस तत्त्वज्ञानमें। कितनी ऊँची विभूति हम आपने पाई और इस विभूतिका आदर न करें और विषयोंके साधनोंको ही अपना देवता मानलें; परिवारको, धनको, मित्रोंको ही अपना देवता मानलें और इन देव शास्त्र गुरुवोंको भूल जायें तो उसका फल क्या होगा? यही सब जो आंखों दिख रहा है। नाना प्रकारके जीव जन्तु मिल रहें हैं, ऐसे शरीरोंमें जन्म लेनेका फल ही मिलेगा।

एक शराबी था। वह शराबकी दुकान पर गया, बोला हमें बढ़िया शराब दो। हां हां हमारी दुकानमें बढ़िया ही शराब है। अजी यों नहीं हमें बहुत बढ़िया शराब दो जिससे कि उसके पीते ही काम ही काम हो जाय। काम हो जानेका मतलब है गिर पड़ना। हमेशाके लिए तो नहीं मगर बेहोश हो जाय। बोला हां हां हकारी दुकान पर बढ़िया ही शराब है। फिर बोला नहीं बहुत बढ़िया दो। उसने कहा देखो ना, ये तुम्हारे दादा चाचा पचासों दुकान पर पड़े हैं, मुंहमें कुत्ते मूत रहे हैं, इनको देखकर भी तुम्हें विश्वास नहीं होता कि हमारी दुकानमें बहुत बढ़िया शराब है। सो मोहमें मस्त हम संसारी जीवोंका इन कीड़े मकौड़ों गधे सुवरों, पक्षियों आदिको देखकर भी यह विश्वास नहीं होता कि इस संसारमें मोह और मिथ्यात्व का मदिरा पीनेका ही यह फल है।

भैया! कुछ बढ़िया साधन मिले हैं, आरामसे रहनेकी जिन्दगी मिली है तो उसमें सुख नहीं मान पाते, उससे आगेकी तृष्णा बढ़ रही है सो जो वर्तमानमें पास है उसका भी आनन्द खत्म है। तो बहुत बढ़िया पर्याय तो यह है कि जैसे हम आप मनुष्य हो गए हैं, यह शरीर मिला ना? तो इस शरीरमें ही यह अनुभव करें कि यह मैं हूं, मैंने यह किया। मैं यों कर दूंगा, तो उसे कुछ न समझो। बारबार इस देहको ही मैं मानकर लोगोंसे गर्वभरा अहंकार करते हैं, व्यवहार करते हैं, उनकी पहिली अटक तो यह है। हम धन और परिवारके अटककी चर्चा नहीं कर रहे हैं। वह तो महामूढ़ता ही है कि उन घरके लोगोंके पीछे तो हम आप चिंतित बने रहते हैं। इन्हें यों सम्पन्न बना दिया जाय, इन्हें कैसे सुखी कर दिया जाय? अरे उनके कर्म जुदे-जुदे हैं। उनके पापोंका उदय होगा तो तुम

क्या कर लोगे ? तुम उनकी चिंता क्यों करते हो और उनके पुण्यका उदय होगा तो तुम क्या कर लोगे उनका ? चिंता करो तो अपनी करो।

देखो भैया ! अनन्तकालसे संसारचक्रमें रूलते चले आए, आज बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव पाया। अपने दिलकी बात दूसरोंको बता सकते हैं। दूसरोंके द्वारा कही हुई बात हम समझ सकते हैं। ये पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े अपना कुछ दर्द भी नहीं बता सकते। कोई गाय बीमार है। बीमार तो है गलेके रोगसे और लोग तकुवा गर्म करके लगा देंगे पीठ पर, यह तो उसका इलाज है। तो देखो इन सबकी अपेक्षा इस मनुष्यमें कितनी उत्कृष्टता है। फिर भी अटकोंमें अटके रहें यह तो उचित नहीं है। पहिली अटक तो है अपने शरीरमें, पर्यायमें कि यह मैं हूं। और अन्दर चलें तो दूसरी अटक हो जाती है। रागद्वेष विषयकषायोंकी नवीन नवीन भवोंमें भी जबसे जो कोई उत्पन्न होता है, कषायोंमें ही वह लवलीन हो जाता है। किसी अन्य मायामय पर्यायके प्रति रोष आए तो यह हठ कर लिया जाता कि मैं तो इसके परिवारको बरबाद करके ही रहूंगा। अव्वल बात तो यह है कि कोई किसी को बरबाद करने वाला नहीं है। दूसरी बात यह है कि उनकी बरबादी भी हो गई तो उससे तुम्हें कुछ लाभ नहीं है। तीसरी बात यह है कि यह जो संयोग हो गया है वह कितनी देर का मेलमिलाप है ? जैसे कोई रास्तागीर पूरब दिशासे आ रहा है और यह पूरब को जा रहा है तो ये दोनों रास्तेमें मिल जाते हैं। राम राम कर लिया। सिर्फ इतनी देरका मिलन है या ज्यादह से ज्यादह कषायसे कषाय मिले तो चिलम भर कर पी ली; यह थोड़ी देरका मिलन हैं, बादमें सब विघट जायेंगे। पर यहांका जो ४०-५० वर्षका मिलन है, लोगोंसे परिवार से, यह मिलन इतने भी बांटे में नहीं पड़ा उस अनन्तकालके सामने। हमने भव बिता बिताकर अनन्तकाल व्यतीत कर दिए, उन कालोंके आगे मेरे ५० वर्षका कुछ मूल्य है क्या ? सब निकल जायेंगे। इतना तो समय यों ही निकल गया, अब रहा सहा शेष समय भी निकल जायगा। इस दूसरी अटकको भी मत रखो।

जब कषाय उत्पन्न हों तब ऐसा विवेक बनानेका यत्न रखो कि मैं तो कषायरहित मात्र ज्ञानस्वरूप हूं और ये कषाय मेरे विनाशके लिए उत्पन्न होते हैं। परका निमित्त पाकर ये कषाय उत्पन्न होते हैं। ये मेरे स्वभावसे अत्यन्त विपरीत हैं। ये मैं नहीं हूं। बन सके तो इतना ख्याल कषायोंके समयमें बना लो बस आप घर बैठे ही अमीर हैं। वही मोक्ष मार्गी है धर्मात्मा है, कर्मोंकी निर्जरा करता है। तो इन विषय कषायोंकी अटक भी खत्म करना चाहिए। इसके बाद तीसरी और भीतरकी वृत्ति क्या है कि

जिसमें हम अटक जाते हैं वे परिणतियां हैं विचार तर्क वितर्क, जसे कोई बात आपके सामने रखे। देखो यह बात ऐसी है और दूसरा कोई कहे, नहीं जी ऐसा नहीं है तो इसकी अड़ हो जाती है कि ऐसा ही है। अरे काहे पर अड़ रहे हो ? कौनसी चीज सामने है ? ये विचार वितर्क आत्माके भीतर नहीं हैं। ये तेरे नहीं है। तेरा तो अरहंत सिद्ध प्रभुके समान केवल शुद्धज्ञान स्वरूप है। उस बड़ी निधिकी भूल करें तो छोटी-छोटी चीजोंसे अटक रहती है।

जैसे कोई सेठ असमयमें गुजर जाय और उसकी लाखोंकी विभूति छूट जाय तो सरकार उसकी विभूतिको कोर्ट आफ वार्ड कर लेती है और उसके बालकोंके पालन पोषणके लिए ५०० रुपया माहवार भेजती रहती है। उसका बच्चा १०-१२ वर्षका हो गया। ५०० रुपया सरकार भेजती है, सरकार तो बड़ी दयालु है मुझे घर बैठे ५०० रुपये प्रति माह सरकार देती है—ऐसा सोचकर वह बच्चा खुश हो रहा है और जब २० वर्ष का हो गया और सच्चा हाल मालूम हो गया कि सरकार ने मेरी ४ लाख की जायदाद कोर्ट आफ वार्ड करली है, लगभग डेढ़ हजार रुपया महीना अपना बना लेती है और ५०० रुपये महीना हमें दे देती है, तो वह दरख्वास्त दे देता है सरकारको कि अब मैं बालिग हो गया हूं, हमारी जायदाद दे दी जाय, हमें ५०० रुपया माहवार नहीं चाहिए। वह ५०० रुपया माहवार की मनाकर देता है और जायदाद को प्राप्त कर लेता है। इसी तरह हम लोग अनन्त काल से नाबालिक बने आ रहे हैं। ज्ञान जब नहीं है तब आत्मानुभव नहीं है। जब हम अपनेमें अपनी शरण नहीं पा सकते हैं तो नाबालिग की तरह अनाथ हैं। कौन नाथ है इस नाबालिगका ? अनन्त आनन्दकी निधिको इन कर्मोंने कोर्ट आफ वार्ड कर लिया है, उसकी एवजमें थोड़ी दुकान, मकान, घरके ५-७ आदमी ये दे दिए हैं। इनमें ही हम आप रमें रहे और पुण्यके गुण गाते रहे। देखो कैसे पुण्य आ रहे हैं, सब ठाठ बाट हैं, वैभव है और कभी किसी भाई को सच्चा ज्ञान जग जाय, आत्मानुभूतिके साथ इस मुझमें तो प्रभु जैसा आनन्द भरा है स्वाधीन आनन्द है तो विषयोंका पुण्य ठाठों का बहिष्कार करके अपनी निधिका आग्रह करता है ज्ञानी।

यह आनन्द क्या विषयोंका है ? प्रथम तो ये सब पराधीन हैं। कर्मों के आधीन हैं, लोगोंके आधीन हैं और फिर ये नष्ट हो जाने वाले हैं और जब तक हैं तब तक भी सदा सुखमय स्थिति बन सके सो नहीं हो सकता है। कोई आदमी ढूंढ कर लावो ऐसाजो दिनभर सुखसे रह सकता हो। दो घंटे लगातार सुखसे रह सकता हो, ऐसा आदमी ढूंढो कोई मिले। चले जावो

किसी मुहल्लेमें, बाजारमें आफिसमें कोई ऐसा मिले तो हमें भी दर्शन करा दो। हमें भी दर्शन करने की चाह है जो एक घंटा तक लगातार सुखी रह सकता हो। न हम हैं, न आप हैं। कोई न मिलेगा। कारण क्या है कि साता और असाता इनके क्षण-क्षणमें बदलते हुए रहते हैं। किसीके लड़के की शादी हो, सब बड़े खुश हो रहे हैं, बारात चल दी, काम हो रहा है पर उन दस पांच दिनोंके प्रसंगमें बापर कितना परेशान है, कितना दुःखी है? लेकिन मोहके कारण अपने उस दुःखको दुःख नहीं गिनता है। मगर समय पर खा नहीं सकता। कोई पंच बिगड़ गया तो हाथ जोड़े खड़े, मनावें फिर कोई रिश्तेदार बिगड़ गया उसे मनानेके लिए हाथ जोड़े बाप खड़े हैं। रिश्तेदार लोग ऐसे मौकोंकी बाट ही जोहा करते हैं कि कब कोई काम काज हो इन्हें देखेंगे। तो बापको कितना क्लेश है? कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जो एक घंटा भी लगातार सुखी रह सकता हो तो यह लोक सुख दुःखसे ही भरा हुआ है। इसके बाद भी यह पापका कारण है। आगे और दुःख देने का कारण बन गया ऐसा यह सुख है। इसमें आनन्द न मानो।

पुण्यका फल भी कुछ चीज नहीं है—ऐसा ज्ञान जब जग जायगा तो यह मनुष्य कहेगा कि ले जावो पुण्यकर्म अपना पैसे-पैसेका हिसाब अपनी जायदाद ले जावो। हमें कुछ न चाहिए। हमें तो केवल अपने अनन्त आनन्दकी निधि चाहिए। वह अन्य चीजोंकी उपेक्षा कर देता है और अपने स्वरूपके अनुभवमें लगता है और वह अपने अनन्त आनन्दको लेकर ही रहता है। किसकी अटक कर रहे हो? ये विचार ये वितर्क ये अटक तेरे स्वभाव नहीं हैं। ऐसे इन अटकोंसे परे हो जावो। रागद्वेष की अटकसे परे हो जावो और अपने ज्ञानस्वरूपमें विश्राम लेकर बैठ जावो तो परम आनन्द उमड़ पड़ेगा। यह जीव इस पर्यायमें रत होता हुआ नाना प्रकारके कर्मोंसे बंधता है और संसारमें भ्रमण करता है। दो ही तो बातें हैं। इस शुद्ध ज्ञानमात्र अपनी सत्ताके कारण जैसा मेरा स्वरूप है तावन्मात्र अपनेको अनुभव करोगे तो संकटोंसे मुक्त हो जावोगे और उसके विपरीत रागद्वेष नारकादिक पर्यायरूप अपने को अनुभव करोगे तो संसारमें जकड़े हुए हो ही।

यह मिथ्यादृष्टि जीव सर्व बांधे हुए कर्मोंके निमित्त से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भावरूप ५ प्रकारके परिवर्तनोंका परिभ्रमण करता है। जो परद्रव्योंमें रत है वह मिथ्यादृष्टि है और मिथ्यात्वकी जो परिणति है वह कर्मोंसे बंध जाती है। जो पर्यायोंमें रत है उसे तो पर समय जानों और जो आत्मस्वभावमें स्थित है उसे स्वसमय मानें, मिथ्यादृष्टि मानों।

इस दोहासे हमको क्या शिक्षा मिलती है कि स्वसम्वेदनरूप वीतराग सम्यक्त्व तो उपादेय है और परद्रव्योंमें जो बुद्धि लगनेकी परिणति बनी है वह परिणति हेय है। जगत्में जो भी दृश्यमान हैं वे सब हेय हैं, सब असार हैं। सार तो केवल इन्द्रियोंको संयत करके परद्रव्योंको भूल करके अपने आपमें स्वयं सहज जो तत्त्वदृष्टि होती है शुद्ध ज्ञानमात्र, बस, उस प्रभुका आलम्बन ही सारभूत है।

एक बार एक बारातमें सभा जुड़ी थी। तो पहिले जमानेमें रिवाज था कि विवाहमें गाने के लिए कोई वेश्या बुलाते थे। सो उस बारातमें वेश्या बुलाई गई थी। उस समय जो गान तान हो रहा था उसमें तबला भी अच्छा बज रहा था। मंजीरा भी अच्छा बज रहा था और वेश्या भी हाथ पसार-पसार कर नाच रही थी। एक कविने एक दोहे में लिखा है कि वहां क्या हो रहा है ? मिरदंग कहे धिक है धिक है। मिरदंग की आवाज कैसी होती है ? धिक है, धिक है की आवाज होती है। तो मिरदंग कहता है कि धिक है धिक है, मायने धिक्कार है धिक्कार है। तो मंजीरे कहें किनको किनको। यानि किसको धिक्कार है ? तो वेश्या हाथ पसार कहे इनको-इन को इनको-इनको। चारों दिशावोंमें जो बराती लोग बैठे हुए हैं उनको वेश्या कह रही है कि इनको धिक्कार है। फिरसे इस दोहाको सुनिये—"मिरदंग कहे धिक-धिक है, मंजीरे कहें किनको किनको। तब वेश्या हाथ पसार कहे इनको इनको इनको इनको।" जो दृश्यमान है, वह सब क्षणभंगुर है, असार है, विनाशीक है, उससे प्रीति न करो और कदाचित् पापोंका फल आ जाय तो उस समय भी न घबड़ावो। मैं तो पाप पुण्य दोनोंसे ही न्यारा शुद्धज्ञान मात्र हूं। भगवान्के उपदेशों से सारभूत रत्न इतना ही है कि अपने आपके सहजस्वरूप पर दृष्टि देना है।

इस आत्माकी अचिन्त्य शक्ति है। जगत्में जो कुछ भी चमत्कार है वह सब आत्माके ज्ञानका चमत्कार है। यह आत्मा स्वभावतः ज्ञानस्वरूप है। कितना बड़ा ज्ञान है ? जितना समस्त विश्व है क्योंकि यह ज्ञान समस्त विश्वको जाननेकी शक्ति रखता है और ऐसे विश्व अनगिनते भी हों तो भी उनको जाननेकी ज्ञानमें शक्ति है। ऐसे अतुल ज्ञानवाला होकर भी हम और आप संसारमें कैसे रुलते रहते हैं ? इसका कारण है तो मुख्य कारण है अपनी भूल और यह अपनी भूल मेरे स्वरूपसे उत्पन्न नहीं होती है, किन्तु इसका निमित्त कारण है मिथ्यात्व कर्म। आज उस मिथ्यात्व कर्मकी शक्तिको बतलाते हैं जो मिथ्यापरिणामोंसे खुद ही उपार्जित की है।

कम्मइँ दिढघणचिक्किणइँ गरुवइ वज्जसमाइँ।
णाणवियक्खणु जीवऽउ उप्पहि पाऽहि ताइँ ॥७८॥

ये ज्ञानावरणादिक कर्म इस ज्ञानी जीवको, इस ज्ञानघन आत्माको खोटे मार्गमें डालते हैं। ये दृढ़ हैं, बलिष्ठ हैं और चिकने हैं, विनाश इनका किया जाना जरा कठिन है और ये भारी हैं, वज्रके समान अभेद्य हैं। यहां वर्णन किया गया कि कर्मोंमें इतनी शक्ति है पर यह बात नहीं भूल जाना कि कर्मोंमें तो केवल कर्मोंमें ही कुछ बना ले ऐसी ही करतूत है किन्तु कर्मोंके उदयको निमित्तमात्र पाकर यह आत्मा अपनी विभाव परिणतिसे भूल खाता है।

भैया! बच्चोंके पढ़नेकी किताबमें एक कहानी आया करती है कि एक वनमें एक सिंह बड़ा उपद्रव मचाया करता था। अनेक जीवोंको मार कर खा लेता था तो सब पशुवोंने मिलकर सलाह की कि हम लोग एक एक करके बारी बारीसे सिंहके पास चले जाया करेंगे। इस तरहसे तो एक ही पशु रोज मरेगा, नहीं तो रोज रोज बहुत पशु मरेंगे। सो रोज बारी-बारी से पशु उस सिंहके पास पहुंच जावें। सिंहसे यही निवेदन किया गया। सिंह ने भी स्वीकार कर लिया। एक दिन एक लौमड़ी की बारी आई। लौमड़ी ने सोचा कि अब तो हमारे प्राण जा ही रहे हैं अपना एक हथकंडा तो दिखा दूं, यदि चल गया तो ठीक है, नहीं तो मरते तो हैं ही। लौमड़ीने सोचा कि देर करके सिंहके पास पहुंचें। सो देर करके पहुंची। उधर वह शेर बड़ा क्रोध किए बैठा था। आज किस अभागे की बारी है जो अब तक नहीं आया। जब लौमड़ी पहुंची तो सिंह बोला अरी लौमड़ी तू इतनी देर करके क्यों आई? लौमड़ी बोली हे वनराज, मैं बड़ी आफतमें थी सो मैं देरमें आपके पास आ सकी हूं। मुझे रास्तेमें आप जैसा ही एक सेर मिला और शायद आपसे भी बढ़ा चढ़ा था। उस सिंहने मुझे छेड़ लिया। तब मैं उस सिंहसे यह प्रतिज्ञा करके आई हूं कि मुझे छोड़ दो, मैं अपने स्वामीके पास पहुंचकर उनसे आज्ञा लेकर मैं आपके पास फिर आ जाऊँगी। तब मैं आपके पास आ सकी। शेरको बड़ा क्षोभ हुआ, वह कौनसा शेर है इस जंगल में? मेरे सामने भी रह जाये? चलो देखूं, वह लौमड़ी तो चाहती ही थी। आगे आगे लौमड़ी चले और पीछे शेर। एक कुवेंके पास उसे ले गई। बोली महाराज वह सिंह यहां छिपा हुआ है इस कुवेंके भीतर, सिंहने कुवेंमें देखा तो उसकी छाया पानीमें पड़ी। उसे देखते ही क्रोध आ गया। एक दहाड़ दी। उस दहाड़से कुवेंसे प्रतिध्वनि निकली। अब उसे विश्वास हो गया कि यह बदमाश यहां छिपा हुआ है। सो उस सिंहके मारनेके लिए वह कुवेंमें कूद

पड़ा। पर वहां था क्या ? कुछ नहीं। लोमड़ी खुश होकर सब पशुवोंको बुलाकर कहा कि देखो हम सब व्यर्थ ही मर रहे थे। हमने अपने हथकंडे से सब लोगोंकी रक्षा उस सिंहको मारकर की। तो देखो सिंहने अपने प्राण क्यों गवां दिए ? केवल भ्रम था और उस भ्रमका फल कितना कटु मिला कि प्राण चले गए। वह सिंह लड़ लड़कर मरा। इसी प्रकार भ्रान्त पुरुषों की दुर्गति होती है।

मोह करना हमें आसान लगता है क्योंकि घर मिला है ना खुदको, घरमें रहने वाले जो दो चार जीव हैं वे अधिकारमें है ना ? सो खूब मोह करो, खब भ्रम करो पर इसका फल क्या होगा सो अंदाज करलो। इसका फल मिलता है इन चौरासी लाख योनियोंमें जन्म मरण करना। यह सब होता है अपनी गलतीसे। बन्दर होता है ना। बंदर याने जो बनको दर देवे, बनमें ये डाली-डालीको तोड़ देते हैं ना ? जो बनको उजाड़ दे उसे कहते हैं बंदर। भैया, देखा है तुमने बंदर ? हां, जरूर देखा होगा। एक घड़ेमें अच्छे छोटे-छोटे लडुवा भरकर रखलो और फिर उसे छत पर रख दो तो बंदर आयेगा और उस घड़ेमें दोनों हाथ डालेगा। दोनों हाथोंसे लड्डू पकड़ लेगा। वह दोनों मुट्ठी न खोलेगा, यों ही बाहरको खींचेगा और उछल-उछल कर बाहरको भगेगा ? उसे यह ध्यान है कि मुझे घड़े ने पकड़ लिया है, वह अपने दोनों हाथ नहीं निकाल पाता है किन्तु भ्रम उसके यही लग गया कि मुझे घड़े ने पकड़ लिया है सो वह बाहरको भागता है। इसी प्रकार हम आपके कोरा भ्रम लगा है, सो व्यर्थ ही कष्ट पा रहे हैं।

भैया ! क्या दुःख है ? केवल भ्रम है। चिंता है कि मेरा घर कैसे चलेगा। आय कम हो रही है। अरे कम आय हो रही है तो हो जाने दो। पापका उदय है तो दुःख होंगे ही। उनकी निवृत्तिके लिये भी धर्मकी शरण आवश्यक है। धर्मकी तो शरण लो, जो आपके अधिकारकी बात है उसपर तो दृष्टि दो। चिंतावोंसे तो पूरा नहीं पड़ता है। और यदि पुण्यका उदय है तो चाहे जितना टोटा हो, उस टोटेकी पूर्तिके लिए सम्पदा प्राप्त हो जायेगी। परवाह क्या है ? धर्मकी शरण मत छोड़ो। इस जगत्में सारभूत बात कुछ भी नहीं है, केवल एक धर्मके स्वरूपका परिचय करना और उस ओर झुकना यही मात्र एकसार भूत बात है। देखो ये कर्म इस ज्ञानघन ज्योतिस्वरूपको भी तिरोहित करनेका कारण बन गये हैं। सो जैसे कुत्तेका बल मालिकके संग तक ही रहता है। मालिककी छू छू की सैन न मिले तो कोई भी उसको डंडा दिखाकर भगा सकता है। कुत्तेमें बल आता है तो मालिक के सैनका बल आता है। इसी प्रकार इन कर्मोंमें मेरे विनाश

की ताकत आती है तो हमारे बिगड़नेकी सैन पर। जैसे लोकमें कोई खुद ही अपने भाव बिगाड़ ले, अपनी हँसी मजाक कराने जैसा ढंग बनाले तो लोगोंको भी दिलचस्पी होती है, उसकी हँसी मजाक न करें तो किसमें दम है कि कोई हँसी मजाक कर सके।

हम खुद रागद्वेष मोह भावोंका आदर करते हैं तो ये कर्म दमादम बढ़ते ही चले जाते हैं। कर्त्तव्य क्या है? मोक्षमार्गमें चलना। सम्यक्त्वका जगाना मोहका मेटना कहलाता है। घरमें रहना पड़ता है, रहिए, पर आप का विचार आपके पास है। जैसा चाहो वैसा अपना उपयोग बना सकते हो। किसीको शरण परमार्थसे न समझो। खुद अच्छे होते हैं तो दूसरे शरणभूत बन जाते हैं। खुद बुरे हो जायें तो दूसरे शरणभूत भी नहीं होते हैं। रावण और विभीषणमें कितना प्रेम था? घटना याद होगी कि जब यह सुना कि दशरथ के पुत्र और जनककी पुत्रीके कारण रावणकी मृत्यु होगी तो विभीषणने यह प्रोग्राम रचा कि दशरथ और जनकके सिर ही उतार लें तो फिर पुत्र और पुत्री होंगे नहीं। फिर रावण खतरेमें पड़ेगा ही नहीं। इतना प्रेम था रावणसे पर जब रावण खुद ठीक व्यवहारमें न रहा, सीता को जंगलसे हर लाया तो फिर उसके व्यवहारको कौन सह सकता है? विभीषणने पहिले समझाया, जब न माना तो सब राज्यपर वैभवपर सब पर तिलांजलि देकर रावणके विरुद्ध होकर रामसे जा मिला। जब तक सद्व्यवहार है तब तक पूछने वाले भाई बंधु हैं। जब खुदका व्यवहार सद् न रहेगा तो कोई पूछने वाला नहीं है। तब ऐहसान किसका मानें? ऐहसान अपने चरित्रका माने या अपने सद्व्यवहारका मानें।

यह जीव जब अपने श्रद्धान, अपने ज्ञानसे पतित हो जाता है तब निमित्तनैमित्तिक भावपूर्वक जो कर्म बनते हैं उनके उदयका निमित्त पाकर यह जीव रागद्वेषरूप बन जाता है, तो ऐसे ज्ञानमय जीवको जो एक साथ लोक अलोकका विकास करने वाले ज्ञानादिक अनन्त गुणोंकर सहित है उसको अभेद रत्नत्रयरूप निश्चय मोक्षमार्गका विरोधी जो मिथ्यात्व कर्म है वह उन्मार्गमें डाल देता है। मिथ्यात्व कहो या विपरीत हठ कहो या अविवेक कहो, अनर्थान्तर है। अपना नहीं है और अपना माननेका एक हठ है।

देखो भैया! हठका फल कहीं अच्छा नहीं होता है। एक बार एक बहूके मनमें आया कि मुझसे सासूजी लड़ती व बहुत नखरा करती है। इसे ऐसा मजा चखावें कि यह जीवन भर याद करे। पति था उसके कब्जेमें, सो जो चाहे सो कराले। एक रोज वह बहाना करके बैठ गई। तुम्हें मालूम होगा कि बहाना करने लायक कौनसी बीमारी होती है? जिसको डाक्टर

भी नहीं बता सकता है। ऐसा रोग है पेटका और सिरका दर्द। सो वह इन दोनों रोगोंका बहाना करके पड़ गई। अब वह दर्द नहीं मिटता। पति पूछता है, कि यह दर्द कैसे मिटेगा? तो वह बोली कि अभी मेरे जरासी झपकी आई थी तो एक देवताने बताया कि सूर्योदयसे पहिले जो तुमसे प्यार करता हो, उसकी मां सिर मुड़ाकर मुँह काला करके तेरे सामने आयेगी तो तू बचेगी, नहीं तो मर जायेगी। इसका अर्थ क्या है कि सास सिर मुड़ाकर मुँह काला करके इसके सामने आए। तो पतिने सोचा कि मालूम पड़ता है कि इसकी चाल है तो ससुरालको उसने झट चिट्ठी लिख दी कि तुम्हारी लड़की बहुत बीमार है, बचनेकी आशा नहीं है। एक देवताने यह कहा है कि इसकी मां सिर मुड़ाकर मुँह काला करके सूर्य निकलने के पहिले उसके सामने आये तो बचेगी, नहीं तो मर जायगी। सो मां की ममता, सिर मुड़ा कर मुँह काला करके आ गई। तो जब सिर मुड़ा हो और मुँह काला हो तो फिर पहिचाना तो नहीं जा सकता। सो वह स्त्री बड़ी खुश हुई। तो वह बोली "देखे बीरबानी की चाले, सिरमुंडे और मुँह काले"। याने बीरबानी माने औरतो की करामात देखी कि मैंने अपनी सासका सिर मुड़ाया और मुँह काला करवाया। तो वह मर्द बोलता है "देखी मर्दोंकी फेरी, अम्मा तेरी कि मेरी।" देख तो यह मेरी करामात कि यह अम्मा तेरी हैं कि मेरी हैं। जब उसने गौर करके देखा तो बहुत ही शर्मा गई। तो हठ किस पर करोगे? बलवान् से हठ करोगे तो काम बनेगा नहीं और निर्बलसे हठ करोगे तो अन्याय किसीका सिद्ध होता नहीं।

यदि कोई अन्याय पर उतारु हो जाय तो केवल दो बार-चार बार अन्याय कर सकेगा। मगर यहां भी लोकव्यवस्था है, किसी का अन्याय किसी पर अधिक बार चल नहीं सकता है। और फिर किसे छोटा मानते हो? जो बड़ा है, करनी उसकी छोटी है तो वह बड़ा छोटा है। अव्वल तो जीवनमें ही छोटा बन जायगा, पर जीवन में न बन सका तो मरने के बाद तो एकदम न्याय हो जायगा—जो बनना हो बन जावो, पर किसी को छोटा मत मानों। हम छोटा आज किसको कहें? जिसकी करनी अच्छी है वह तो बड़ा है। अव्वल तो इस जीवनमें ही बड़ा बन जायगा और न मौका मिला तो मरने के बाद एकदम सद्गति हो जायेगी। यहां क्या छोटे-बड़ेका हिसाब लगाते हो? अपने आपको देखो। अपने आपका कैसा बड़प्पन हो इसकी फिक्र करो। उसका एक ही उपाय है धर्मधारण करना। दूसरा इस का कोई उपाय नहीं है। परिणाम शांत रखो, वस्तुका सही-सही ज्ञान रखो, मोह को त्यागो। काम तो करने से ही बनेगा। यह गुप्त काम है, भीतरमें

कर लेने का काम है। ज्ञानके द्वारा सत्य विचारने की बात है।

भैया ! अपने को यदि अकिंचन देखेंगे, मैं कुछ नहीं हूं, मैं अन्य कुछ नहीं हूं, अकिंचन हूं, मेरे में मेरा ही स्वरूप है, मेरे से किसी परका सम्बन्ध नहीं है—ऐसा शुद्ध केवल ज्ञानमात्र अपने को देखोगे तो अनन्त पवित्र परिणाम होगा। और बहकाने वाली जो जगतकी सामग्री है उसकी प्रीति बनेगी तो अनन्तमहिमानिधान यह प्रभु गलत ही रहेगा। यह राग द्वेषभावरूपी आग जगतके जीवोंको इन्धन की तरह जला रही है, फिर भी इन सब जीवोंका यही रागका उपाय चल रहा है। शुद्ध आत्माका अनुभव जब होता है तब रागकी कठिनता भी नहीं रहती है। थोड़े थोड़े से काम नहीं चलता कि चलो थोड़ा मोह में भी लगें और थोड़ा भगवान् से भी प्रेम बना रहे। तो थोड़े-थोड़े आत्माके अनुभवसे काम न चलेगा। चाहे आप १० मिनट को ही ऐसा साहस करें कि मैं अकिञ्चन हूं। इस ही उपयोगसे आत्मानुभवका अवसर रहेगा। राग किसीका भी ही है तो वह आत्मानुभव का बाधक है। चाहे वह स्त्री का राग हो, चाहे पुत्रका राग हो, चाहे सेवा परोपकारका राग हो, वे सब आत्मानुभवमें बाधा डालनेमें एक समान है। भविष्यमें फर्क हो यह बात अलग है।

एक ब्राह्मण बुढ़िया थी। उसके तीन लड़के थे। सो ब्राह्मणका सत्कार होता है ना ? कभी कोई पर्व आदि आए तो उसमें लोग भोज कराते हैं। तो एक पढ़ौसका ही लोभी बनिया था। उसकी स्त्री रोज तकाजा करती थी कि किसी ब्राह्मण को भोजन करावो। किसी ब्राह्मणको वह भोजन कराना चाहती थी। सो वह बनिया ऐसा व्यक्ति ढूंढने निकला जो ब्राह्मण कम खाता हो, जिससे कम खर्चमें ही निपट जाएँ। सो वह बुढ़िया मां के पास पहुंचा ! बोला, तुम्हारे सबसे छोटे बच्चे का कल हमारे यहां न्यौता है। बुढ़िया कहती है कि अच्छी बात है, पर चाहे बड़े का न्यौता कर जावो चाहे मंझले का और चाहे सबसे छोटेका न्यौता कर जावो, वे तीनों ही तिसेरिया (तीन सेर खाने वाले) हैं। सो भय्या ! ऐसी ही रागकी बात है राग तो सभी आत्मानुभवके बाधक हैं।

किसी पर राग करते हो, रागके कालमें तो आत्मानुभव होता ही नहीं है। आत्मानुभवमें बाधा डालने वाला राग है। हां कोई शुभराग है तो उसमें एक अवसर है कि उससे निपटकर हम शुद्धोपयोग की वृत्तिमें आ सकते हैं। शुद्धोपयोगके बाद कोई शुभोपयोगमें नहीं आया। जितने भी जीव शुद्धोपयोगमें आए सब शुभोपयोग के बादमें ही आए। पर शुभोपयोग का सम्बन्ध तो आत्मानुभवसे नहीं रहा। तो ऐसी हिम्मत बनावो कि किसी

क्षण हम सबको भूल सकें, परम विश्रामसे बैठ सकें तो अपने आपसे आनन्दका प्रवाह उमड़ पड़ेगा। लौकिक बातें ज्यादह पढ़ने लिखने की सीखने की आवश्यकता नहीं है। कल्याणके लिए तो संयमकी ओर अंतः संयम की आवश्यकता है। इन्द्रिय और मनका संयम कर सके तो वह आत्मानुभवके मार्गमें बढ़ सकता है। अपने ज्ञानघन आनन्दस्वरूप आत्मा की आज यह क्या दशा हो रही है? इसका कारण है स्नेह, परवस्तुवों का राग। श्रद्धासे यह समझलो कि इन परवस्तुवोंसे मेरा हित है, बस इतनी मिथ्यात्वमय परिणतिसे यह सारी दुर्गति हो रही है।

भैया! क्यों नहीं परिणाम उमड़ता है मोही जनोंका अपने पड़ौसी पर अन्य जीवोंपर? देह से, रागसे, तो रागका परिणाम उमड़ता है। धर्मात्माजनों पर क्यों नहीं इतना अनुराग होता है? इसका कारण क्या है? मोह की तीव्रता। मोह हटना हो तो ये तन, मन, धन, वचन सब कुछ उन प्राणियों पर भी न्यौछावर कर दो जिनसे मोह कुछ नहीं है। मोह-ग्रस्त प्राणियोंके प्रति यदि राग है कि यह मेरा है तो इस मोहके कारण और अन्य जीवों पर व धर्मात्मा पुरुषों पर अनुराग न हो सकने का फल क्या होगा? सो बहुत से फल तो किसी बूढ़े से और उस बूढ़े के लड़के से सुन सकते हो। कोई कहता है कि २० हजार मैंने लड़के को पढ़ाने में खर्च किए, इसकी शादीमें तमाम रुपये जेवरोंमें खर्च किए, अब यह बहू और लड़का दोनों ही फिरन्ट रहते हैं।

एक आज सुबह की घटना है, एक बात ऐसी चली कि कोई बुढ़िया मां के प्रसंगमें किसी भाई ने कहा कि ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती है त्यों-त्यों कषाय बढ़ता है। तो मैंने कहा भाई यह बात तो नहीं है। कषाय सबके बराबर है। पर जो बूढ़ा हो जाता है वह जवानों के दिल से उतर जाता है क्योंकि उन जवानों के कामका नहीं रहता वह बूढ़ा या वृद्ध। सो बूढ़ा तो दिलसे उतर जाता है और उन जवानोंके जवानी के कारण ज्यादह आ जाते हैं विषय साधनोंके भाव। अतः बूढ़ेमें ऐब नजर आते हैं। वह बूढ़ा पुरुष जो उस जवान के दिलसे उतर गया है, यदि उस बूढ़े पुरुषके पास २५-५० हजार रुपयों की पोटली रखी हो तो फिर उस बूढ़ेमें ऐब नजर न आयेंगे। क्यों कि उस बूढ़े से उस जवानको काम निकलना है ना? जब कोई बूढ़ा बुढ़िया अपने काम का नहीं रहता है, उससे उस जवानका कुछ स्वार्थ नहीं सिद्ध होता है तो उस बूढ़े पुरुष या बुढ़िया का आदर नहीं किया जाता। विरले ही पुरुष ऐसे होते हैं जो अपने वृद्ध माता पिता की सेवा करते हैं। पर अक्सर जो लोग कहते हैं ऐसा कि बुढ़ापेमें और तृष्णा या कषाय बढ़

जाती है, तो क्या जो बूढ़े नहीं है उनकी तृष्णा कम है ? सब बराबर है, कोई अन्तर की बात नहीं है, पर जो दिलसे उतर गये हैं उनके ऐब अक्सर नजर आते हैं। इसी कारण ऐसा लगता है पर मोह और कषायकी वृत्ति तो सब जगह एक है।

भैया ! सब अनर्थोंका मूल दृष्टिका फेर है। यह मिथ्यात्व प्रवृत्ति कम जो हमने अपने आपके उल्टे आचरणसे बांध डाला है उसके उदयसे यह ज्ञान ढका हुआ है, आनंन्द विकसित नहीं होता। सो भाई जिस आत्म-ज्ञानके अभावमें जिस अभेदरत्नत्रयकी दृष्टिके अभावमें ये सब संकट आ गए, उस ज्ञानस्वरूपकी खबर लो, उसको याद करो, उसका स्मरण रखो यही मोक्षका मार्ग है और यह ही उपादेय है। धर्म का शरण मत छोड़ो। ऐसे दुर्लभ जीवनको पाकर धर्मके लिए बड़ा उत्साह रखो। इस धन वैभव को ही सब कुछ न समझो, इसको छोड़कर जाना ही होगा। सो भाई कैसा उत्तम समागम मिला है। मूर्तिकी ऐसी वीतराग मुद्रा का और शास्त्रोंका सत्संग समय-समय पर मिलता ही रहता है सो सदुपयोग करलो, इस मनुष्य भव को और अपने जीवनको सफल करलो।

अब यह बतला रहे हैं कि यह जीव मिथ्यात्वपरिणति से तत्त्वको विपरीत जानता है।

जिउ मिच्छत्तें परिणमिउ विवरिउ तच्चु मुणेइ।
कम्मविणिम्मिय भावडा ते अप्पाणु भणेइ ॥७६॥

यह जीव मिथ्यात्वसे परिणमता हुआ विपरीत तत्त्वको जानता है। मिथ्यात्व क्या चीज है ? जैसा नहीं है वैसा आशय बनाना सो मिथ्यात्व है। यह मैं आत्मा स्वयं कैसा हूं ? केवल चैतन्यस्वरूप हूं। इसमें जो विभावकी तरंगे उत्पन्न होती हैं वे आत्माके स्वरूपके कारण नहीं होती हैं। तो जैसा यह मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूं उसकी रुचि और अनुभव तो नहीं हो, किन्तु विपरीत तत्त्वमें अशुद्धपर्यायोंमें रुचि हो तो उसे मिथ्यात्व कहते हैं। जो मिथ्यात्वकी वासनासे वासित है वह जीव परमात्मादिक तत्त्वोंको यथावत् नहीं जानता है, वस्तुके स्वरूपको भी नहीं जानता है। बिल्कुल विपरीत उन्हें उनके स्वरूपको उल्टा माननेकी परिणति होती है। इस मिथ्यात्वभाव की परिणतिसे यह जीव लगा हुआ है। फिर क्या करता है कि कर्म विनि-र्मित भावों रूप इस आत्माको मानता है।

विशिष्ट भेदविज्ञान का अभाव होनेसे यह जीव शरीरके धर्मको अपना धर्म मानता है। गौरवर्ण हो तो यह अपनेको गौरवर्ण वाला मानता है। मोटा हुआ तो यह अपने को मानता है कि मैं मोटा हूं। कृष्ण

हुआ तो यह अपनेको मानता है कि मैं कृष्ण हूं। तो कर्मविनिर्मित भावों को अपना स्वरूप जानता है, यह इसका अर्थ निकला। यह संसारी जीव अगृहीत मिथ्यात्वसे प्रकृत्या अनादिसे फंसा हुआ है। मिथ्यात्व दो प्रकारके होते हैं—एक गृहीतमिथ्यात्व और दूसरा अगृहीतमिथ्यात्व। जो बिना सिखाये बताये मिथ्यात्वभावोंके रूप परिणमें उसे कहते हैं अग्रहीतमिथ्यात्व और ग्रहीतमिथ्यात्व उसे कहते हैं जो विकारोंसे बुद्धिसे व सिखाये बताये, कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुको देवशास्त्र, गुरु मानना। सो यह जीव प्रकृत्या अनादिसे उपाधिवश यह मिथ्यात्वमें जकड़ा है। जिस पर्यायमें गया उसको ही आत्मस्वरूप मानने लगता है। मैं नारकी हूं, तिर्यञ्च हूं, मनुष्य हूं, देव हूं, क्रोधी हूं, मानी हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं, जिस जिस प्रकारके यह अपने परिणाम करता है उस-उस रूप यह अपनेको बनाता रहता है।

यहां यह तात्पर्य निकला कि रागादिकी निवृत्तिके कालमें कर्मजनित भावोंसे भिन्न केवल यह शुद्ध आत्मतत्त्व ही उपादेय है। अन्य कुछ उपादेय नहीं है। यह तात्पर्य हुआ। अब इसके बाद कहते हैं कि पूर्वोक्त कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए भावोंका, जिन मिथ्यात्त्व परिणामोंको करके यह बहिरात्मा अपनेसे उन्हें जोड़ता है, उन परिणामोंका ५ सूत्रोंमें निवारण करेंगे।

हउँ गोरउ हउँ सामलउ हउँ जि विभिण्णउ वण्णु।
हउँ तणु अंगउँ थूलु हउँ एहउँ मूढउ मण्णु ॥८०॥

मैं गौरवर्ण हूं, मैं श्यामवर्ण हूं, मैं भिन्न नानाप्रकारका हूं, कृष्ण अंग वाला हूं, स्थूल हूं, ऐसी जो अपने आपमें आत्मबुद्धि करता है वह बहिरात्मा है। गोरा, काला क्या है? पुद्गलका रूप है। यह शरीर पुद्गल परमाणुवोंका स्कंध है। यह वर्ण पुद्गलकी रूपशक्तिका व्यक्त परिणमन है। ये गौर श्याम आदि वर्णरूप परिणमन पुद्गलकी योग्यतासे होते हैं। पर-पदार्थ उनके होनेमें निमित्तमात्र होते हैं। जीव शरीरवर्गणाको ग्रहण करता है। ग्रहण तो नहीं करता पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी व्यवस्थानुसार जीव कर्मोदयका निमित्त पाकर नवीन शरीरपर पहुंचनेकी क्रिया करता है। पहुंच जाता है और चूँकि इस जीवमें देहके प्रति आसक्ति बुद्धि लगी है सो उस देहको अपने रूप बना लेता है। बना तो नहीं सकता मानता है ऐसा। इस शरीरके प्रति नियत वर्णादिक परिणमनमें निमित्त तो है वर्णादिक नामक नाम कर्मका उदय और वर्णादिक नामकर्मका बन्ध हुआ था, उसमें निमित्त था जीवोंका रागद्वेष भाव। इस प्रकार इस रूपकी रचनामें जीवका रागद्वेष भाव निमित्त था पर इस रूपका मुझ आत्मामें अत्यन्ताभाव है।

पुद्गलके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका मुझ आत्मामें प्रवेश नहीं है, मेरे आत्मामें इस शरीरके चतुष्टयका प्रवेश नहीं है। शरीर अपने रूपसे परिणमता है और यह आत्मा अपने रूपसे परिणमता है। इस प्रकार अत्यन्त भिन्न होकर भी किसी परपदार्थको अपनेरूप माने तो यह जीवका बहिरात्मापन है। ऐसे ही अपने आपको और भी विभिन्नरूपमें यह मूढ़ आत्मा मानता है। मैं अमुक कुलका हूं, अमुक जातिका हूं, अमुक नगरका हूं। कितनी ही कल्पनाएँ यह मोही जीव करता है। ३४३ घन राजू प्रमाण आकाश क्षेत्रमें से किसी भी प्रदेशके साथ इस जीवका सम्बन्ध है क्या कुछ कि मैं यहां का हूं? किस जगहका हूं? त्रिकाल भी इसका किसी आकाश प्रदेशसे सम्बन्ध नहीं है। जहां कहीं भी यह आत्मा रहने लगे फिर भी किसी प्रदेशसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। फिर यह क्यों मोहबुद्धि हो रही है? मैं अमुक नगरका हूं, अमुक गांवका हूं, अमुक जगहका हूं। अरे मैं तो अन्य समस्त जीव द्रव्योंसे न्यारा, समस्त पुद्गल द्रव्योंसे न्यारा; धर्म, अधर्म, आकाश, द्रव्यसे न्यारा काल द्रव्यसे जुदा मैं केवल अपनेस्वरूप रूप हूं। मैं किसी परपदार्थके स्वरूपरूप नहीं हूं।

यह मोही जीव अपनेको न जाने किस-किस रूपमें मानता चला आया है। विकल्पोंकी स्थितियां उनके दर्जे कितने प्रकारके हैं? करता रहे यह विकल्प किन्तु इस जीवका किसीके साथ अणुमात्र भी सम्बन्ध है क्या? इस प्रकार इस आत्माको बहिरात्मा जानो। ऐसे पूर्वोक्त मिथ्यात्व परिणाम से परिणत यह जीव इस संसारमें यत्र यत्र जन्ममरण कर रहा है। दुःखकी जड़ क्या है? सीधे साधे शब्दोंमें कह लो मोह। मोह दुःखोंकी जड़ है। अब वह मोह किमात्मक है, इसकी व्याख्याएँ हैं, पर सीधा अर्थ यह है कि अपना जरा भी सम्बन्ध नहीं है किसी परसे और मान रहे हैं कि यह मैं हूं, यह मेरा है। जिससे मोह है जिन लोगोंसे भैयासे या रिश्तेदारोंसे, किसी से भी मोह है तो बतलावो सब अनन्तजीवोंमें उनके साथ कुछ अधिक विशेषता लगी हुई है क्या? स्वरूपको देखो, सब जीवोंमें वह समानस्वरूप पाया जाता है। किसको अपना मान लिया जाय? निश्चयसे आत्मासे भिन्न कर्मजनित और स्थूल आदिक भावोंको जो सर्वथा हेयभूत हैं उनको अपनेमें लगाता है। उसके सत्त्वके कारण उसका अपने आपमें जो स्वरूप है उसे तो जानो। सर्वप्रकार उपादेयभूत वीतराग नित्यानन्द एकस्वभाव शुद्ध यह जीव है और इस अपनेको नानारूपोंमें मानता है।

यह जीव केवल अपनी कल्पनासे दुःखी हो रहा है। दुःख तो इसमें रंच भी कहीं नहीं है, सर्वत्र सुख है। विषय कषायोंके आधीन बन रहे हैं।

समझ रहे हैं कि अच्छा-अच्छा स्वादका भोजन मिले तो इस जीवको अनन्त आनन्द हो। जान रहा है कि इस देहको आरामके साधन मिलें तो इसने अपना बड़प्पन साध लिया। समझ रहा है कि इस जीवलोकमें यदि मैं अपना कुछ प्रताप बता सकूँ तो मैंने अपने आपको ठीक कर लिया। यों विषयकषायोंके आधीन होकर इस शुद्ध आत्माके अनुभवसे च्युत होकर यह जीव मूढ़ आत्मा होता है। दुबला हुआ शरीर तो यह मानता है कि मैं दुबला हो गया हूं। खेद खिन्न भी होता है। जब इसका वजन घट जाता है। अरे आत्मामें वजन कहां था ? है किसी आत्माका वजन, एक तोला होता होगा आत्माका वजन, १ या डेढ़ मनका आत्मा होता होगा ? अरे वहां तो कुछ भी वजन नहीं है। यह तो आकाशकी तरह निर्लेप है यह तो चैतन्यतत्त्व मात्र आत्मा है। इसका कोई वजन नहीं है। क्या यह आत्मा दुर्बल है ? मोटा शरीर मिले तो क्या आत्मा बड़ा कहलायेगा ? यदि ऐसा ही है तो बड़े समुद्रके मच्छ बन जाना चाहिए ताकि हम बड़े हो जाएँ तो शरीरकी मोटाईसे हम बड़े कहलाते हैं क्या ? नहीं। तो यह शरीर दुर्बल रहे या स्थूल रहे इससे आत्माकी शांति और अशांति का निर्णय नहीं है।

आत्माकी शांति और अशांतिका निर्णय तो आत्माके ज्ञानसे है। शुद्ध ज्ञान हो तो आत्मा आनन्दमग्न है और अशुद्ध ज्ञान हो तो आत्मापर सब संकट हैं ही। क्या संकट हो गया ? परिवारमें कोई बीमार होगया तो संकट मान लिया। अरे तेरे अरहंत सिद्धकी तरह ज्ञानानन्दघन इस आत्मतत्त्वमें क्या संकट आ गया ? यहां कुछ वैभव कम हो गया सो संकट मान रहे। अरे वह तो पुद्गल है। यहां ज्यादह न रहा, दूसरी जगह पहुंच गया तो इससे क्या संकट आत्मामें होगया ? मल बहाने वाले इन असमानजातीय पर्यायोंके बीचमें कुछ शान वाला नहीं रहा, बड़े संकट आ गए। क्या संकट आ गये ? जो अपने आपको शुद्ध ज्ञानस्वरूप मानता है वह सदा प्रसन्न रहता है, निर्मल है, आनन्दमग्न है और जो अपनेको बहुत विपरीत मानता है वह दुःखी है। बस जानकारीकी कलापर ही सुख और दुःख निर्भर है। न धनका इसके सद्व्यवहारसे सम्बन्ध है, न किसी पदार्थोंके कुछ परिणाम जानेसे सम्बन्ध है। सुख दुःखका सम्बन्ध केवलज्ञानकी कलाके साथ है। बड़ा कष्ट आ जाता है। केवल कल्पनाजन्य भावसे धन भी कम हो रहा है। किसीने चुरा लिया है, घरके लोग भी बीमार हो गए, इष्ट भी कोई गुजर गया। समझते हैं कि मुझपर संकटों पर संकट आ रहे हैं। वहां कुछ भी संकट नहीं आ रहा है। अपनी कषायका यह संकट बना रहता है।

देखो तो भैया ! इसका इतराना यह जब मानता है कि मैं मोटा हो

गया हूं तो बड़े गर्वसे अपनी भुजाको तकता है, हाथ उठाता है, मैं बड़ा पुष्ट हो गया हूं, आइने को देखता है। छोटा दर्पण कोई देखनेको लादे तो वह फेंक देता है। अजी बड़ा दर्पण क्यों नहीं लाए? बहुत बढ़िया दर्पण मिले जिस में अपने शरीरकी शक्ल पूरी तौरसे देखकर मूँछ ऐठकर सिर पर हाथ फेरकर अपने आप गर्वसे मौज मानलें कि मैं पुष्ट हो गया हूं। अरे आत्मा की ओर तो विचार कर। तू तो तब पुष्ट कहलायेगा जब शुद्ध ज्ञानप्रकाश का अनुभव हो और आत्मामें ही तेरा निवास हो, शुद्ध आत्मतत्त्वकी ओर तेरा झुकाव हो, वहां तू पुष्ट अपने को समझ और किसी शरीरादिक बाह्यपदार्थों से अपनी पुष्टि न मानो। यह जीव अपने उस शुद्ध ज्ञानस्वरूप के अनुभवसे च्युत होकर चूँकि अपना एकत्व परिचयमें नहीं रहा तो अपने को नानारूप मानता फिरता है। क्या मानता है कि :—

हउं वरु बंभणु वइसु हउं हउं खत्तिउ हउं सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि हउं मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१॥

मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं, वैश्य हूं, क्षत्रिय हूं या शेष और कोई हूं, पुरुष हूं, नपुंसक हूं, स्त्री हूं इत्यादि नानारूपसे अपने को भिन्न-भिन्न मानता है। इस आत्माको तो देखो इसमें कहीं क्या ब्राह्मणपना लगा है कि वैश्यपना लगा है? इस आत्मतत्त्वको तो देखो कि वहां पुरुष लिंग है, कि स्त्री लिंग है? वह तो एक भावात्मक चेतन पदार्थ है। वहां न पुरुषका लिंग है, न स्त्रीका लिंग है। यह तो केवल एक चैतन्यमात्र सत् है। है यह एकस्वरूपी। सारे पदार्थ अपनेमें एक स्वरूपी होते हैं। मैं भी एक पदार्थ हूं और अपने में एकस्वरूप या चैतन्य ज्योतिर्मय हूं। मैं अन्यरूप नहीं हूं। अपना जो आचरण बना है, केवल आचरण व्यवहारके कारण जिसका कुछ रूप दुनियांमें बसा हुआ है उसमें यह कल्पना होती है कि मैं ब्राह्मण हूं, मैं वैश्य हूं, मैं शूद्र हूं, मैं क्षत्रिय हूं। वह सब भी इस जीवकी विभाव कलाका परिणमन है। आत्मा न किसी वर्णरूप है और न किसी लिंगरूप है। जब तक यह विश्वास रहेगा कि मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं तब तक आत्माका अनुभव नहीं जग सकता।

इस आत्माका न तो स्त्रीरूप है, और न पुरुषरूप ही है। अपने आपको कहते हैं ना "मैं"। हिन्दीमें क्या कहते हैं "मैं" और इङ्गलिशमें क्या कहते हैं 'आई'। और संस्कृतमें क्या कहते हैं 'अहम्'। इन शब्दों का भी कोई लिङ्ग नहीं है। स्त्री भी मैं शब्द अपने को बोलती है, पुरुष भी मैं शब्द अपने को बोलता है। स्त्री भी आई बोलती है, पुरुष भी आई बोलता है, स्त्री भी अहम् बोलती है, पुरुष भी अहम् बोलता है। इङ्गलिशमें तो

क्रिया में भी चिह्न नहीं बदलते हैं और संस्कृतमें भी क्रियामें चिह्न नहीं बदलते हैं। हिन्दी में स्त्री बोलती है—मैं जाती हूं, और पुरुष बोलता है—मैं जाता हूं, पर कर्ता में कोई अन्तर नहीं। इङ्गलिशमें भी पुरुष बोलता है आई गो, और स्त्री भी बोलती है आई गो। संस्कृतमें भी अहम् गच्छामि है। चाहे स्त्री बोले चाहे पुरुष। अपने आपके स्वरूपका बोधक जो शब्द है उस शब्दका भी लिङ्ग नहीं है। तब इसका भी कोई लिङ्ग कैसे हो? और देखो इङ्गलिशमें, संस्कृतमें अन्य पुरुषके लिए रूप बदल जाते हैं। ही और शी हो जाते हैं। स्त्रीके उपयोगमें शी शब्द बोलेंगे और पुरुषके उपयोगमें 'ही' शब्द बोलेंगे। और संस्कृतमें भी बदल जाते हैं। पुरुषके उपयोगमें सः शब्द बोलेंगे और स्त्रीके उपयोगमें सा शब्द बोलेंगे। तो अन्य लोगों के लिए तो शब्द बदल जायेंगे किन्तु अन्य पुरुष पर, अन्य व्यक्तिपर अपना कुछ शुद्धतत्त्व नहीं रहा किन्तु अपने आपके बारेमें अपनेको कहा जाय तो वहां सर्व भाषावोंमें एक शब्द बोलेंगे। किसी भी शब्द को बोल लो।

इस मुक्त आत्मामें कोई चिह्न नहीं है। न पुरुष हूं, न स्त्री हूं, न मैं नपुन्सक हूं, ये सब असमानजातीय पर्यायें हैं। न यह सब जीवका चमत्कार है और न केवल पुद्गलका चमत्कार है। जीव और पुद्गल दो पदार्थोंका मेल हो जाने से यह सब परिणमन बन गया है। ऐसा यह जीव एक शुद्ध चैतन्य होकर भी अपनी कल्पनासे नानारूप बन-बन कर इस जगतमें रुलता फिरता है। अब कर्त्तव्य तो यह है कि उन सब विचित्र दशावोंसे अपना चित्त हटाकर शुद्ध ज्ञानमात्र अपने को अनुभव में लावो कि यह मैं आत्मा शुद्ध प्रतिभासमात्र हूं। इसमें किसी अन्यका रंच भी कुछ सम्बन्ध नहीं है।

जिसने अपने आपकी सत्ता का परिचय नहीं किया कि वास्तवमें मैं क्या हूं? तो उपयोग तो कहीं न कहीं टिकना चाहिए। यदि उसे अपने आपका पता नहीं है तो किसी दूसरी जगह टिकेगा। अपने आपका पता हो तो यह अपने आपमें टिक जाये। सो इस मिथ्यादृष्टी जीवको अपने आपके स्वरूपका पता न होने से यह अपने को नानारूप मानता है। मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं, वैश्य हूं, क्षत्रिय हूं और शेष शूद्रादिक हूं। जीवको देखो अन्तर में तो यह एक ज्ञानानन्दमय पदार्थ है। उसमें आचरणोंका विकास तो जरूर विभिन्न है। कोई ऊँचे ख्याल वाला है, कोई हल्के ख्याल वाला है। ऐसे ख्यालकी विचित्रता तो उनमें जरूर है और उसी कारण से उनके पदका आनन्द है, यह जरूरी बात है मगर जैसे लोकव्यवहारमें वर्ण और जाति मानी जाती है ऐसा कुछ लेशमात्र भी आत्मामें नहीं लगा हुआ है। हां आचरणका फर्क तो अवश्य है। यदि किसी मनुष्यसे कुछ सहवास हो

जाय, परिचय हो जाय तो उससे वह आचरणका पता तो लगा लेगा और आचरणों के कारण अनुमान करलो कि ये अमुक प्रकारके हैं। पर किसी की मुद्राको देखकर यह नहीं मालूम पड़ सकता कि यह अमुक जातिका है।

आत्मा शरीरसे न्यारा है। यहां निश्चयनयकी बात चल रही है कि आत्मा वास्तवमें केवल ज्ञानस्वरूप है। इसमें अन्तरभेद होना चाहिए। भेद भी हो तो कल्याणके वास्ते भेद होते हुए भी नजरभेद पर नहीं होना चाहिए। जैसे यह आत्मा किसी वर्णका किसी जातिका स्वरसतः नहीं है इसी प्रकार यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। बस शुद्ध दृष्टि ही तो समता है, अगर यह ख्याल किया जा रहा है कि मैं अबला हूं, स्त्री हूं, पराधीन हूं, मैं अबला हूं, क्या कर सकती हूं ? यह ख्याल बना लेनेसे ही तो सारे संकट छा गए हैं। इस दृष्टिको हटावो और अपने चैतन्यस्वरूपको अपनी दृष्टिमें लो तो सारे संकट समाप्त हो जाते हैं। संकट क्या हैं ? संकट कहीं बाहरी पदार्थों से आते हैं क्या ? कल्पना करके ही तो संकट बना लिए जाते हैं। यहां यह तात्पर्य लेना कि निश्चयसे परमात्मासे भिन्न जितने कर्मजनित भेद हैं, वे सर्व प्रकारसे हेयभूत हैं किन्तु यह मूढ़ आत्मा उन भेदोंका उपादेयभूत जो शुद्ध आत्मतत्व है उसमें लगाये फिरता है। उनका सम्बन्ध बनाता है। मैं अमुक हूं, मैं अमुक हूं।

अनुभव का मर्म बड़ा गहरा है। इसकी प्राप्ति बिना इस लोकका वैभव किस काम आयेगा ? इससे आत्माका पूरा न पड़ेगा। जगत वही है, अनन्त काल है। ३४३ घन राजू प्रमाण लोक है। जहां चाहो मरो, जिवो, जैसा चाहे शरीर पावो, एकदम सब खुलासा है। इस माया जालसे आत्माका पूरा न पड़ेगा। आत्माका पूरा तो इस आत्मसमाधिसे ही पड़ेगा। जो प्रभु अरहंत और सिद्धको जिस उपायसे प्राप्त हुआ है वही दृष्टि देना चाहिए। अन्तरमें मोह न होना चाहिए। चाहे स्त्री हो, चाहे पुत्र हो और चाहे बड़ी व्यवस्थित सम्पदा हो कुछ भी हो, मोह नहीं होना चाहिए क्योंकि वह आप का नहीं है। जो अपना नहीं है उसे जबरदस्ती अपना बनाया तो उसका फल क्लेश ही है। सुख नहीं हो सकता है। सुखका मार्ग कितना सुगम है कि आप अपने में बैठे-बैठे अपने आपकी दृष्टि बनाएँ तो सुखी हो जायेंगे। कोई परकी उपेक्षा ही नहीं है कि हाय अमुक साधन नहीं हैं तो कैसे धर्म करूं ? धर्म करने के लिए बाह्यसाधन चाहियें परिणामोंकी निर्मलता चाहिए। अपने परिणाम आप निर्मल बनावें तो निश्चित है कि सुख मिलेगा। नहीं तो ऐसा यह अज्ञानभावमें परिणत और शुद्ध आत्मतत्त्व की भावनासे

रहित मोही आत्मा संसारमें जन्म मरण कर रहा है। यह मोही जीव अपने को जिस चाहे दशारूप मान बैठता है। यह मिथ्यादृष्टि जीव सोचता है कि मैं तरुण हूं; जवान हूं। जवान हो गये हैं। उनसे पूछो कि यह जवानी कैसे मिट जाती है? एक कवि ने अलंकार खींचा कि जो बूढ़े और बुढ़िया हो जाते हैं तो कमर झुक जाती है ना। तो कविने यह बताया कि वह सिर नीचा करके अपनी जवानी को ढूढ़ता हुआ चलता है कि हमारी जवानी कहां गई? वह तो यों चलता है कि बुढ़ापा आ गया है पर कवि क्या सोचता है कि वह अपनी जवानीको खोजते हुए चलता है। जब शरीर बूढ़ा हो जाता है और मरणके दिन आ जाते हैं तो बड़ा पछतावा होता है, उत्सुकता होती है कि हाय हमने धर्म न किया। ऐसा भले चंगेमें अगर ख्याल हो जाय तो फिर क्या पूछना है? तब तो फिर जीवन भर सुख ही मिलता है। सुखमें मग्न न हो और दुःखमें दुःखी न हो तो फिर सुख ही मिलता है और बाह्य पुद्गलोंका संयोग हैं ऐसा जानकर सुखमें मग्न न हो और दुःखमें घबड़ाना नहीं। दुःख क्या है? अगर किसी पदार्थमें इष्ट अनिष्टकी बुद्धि हो गई तो फिर दुःख ही मिलते हैं। किसी पदार्थको इष्ट मान लिया और वियोग हो जाय तो वह दुःखका अनुभव करता है। यह मोही जीव अपनेको समझता है कि मैं तरुण हूं। अपने को वृद्ध समझता है कि मैं वृद्ध हूं। आत्मा तो तरुण वृद्ध नहीं होता है। वह तो एक ज्ञानमात्र पदार्थ है, सत् है। वह कभी मिटता नहीं। उसको जैसा है तैसा ही मानों तो मोक्षका मार्ग मिल मिलता है। और अपनेको नानारूप मानने का, मनको ढीला करने का स्वभाव है ना। किसी खोटी बातमें चित्त जानेके लिए सदा तैयार ही बैठा है। पर महान् पुरुष वही है जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेका यत्न करे।

जो विवेककी बात हो, यथार्थ बात हो, सही बात हो उस रूप ही उद्यम बनावो। तरुण हूं, वृद्ध हूं, रूपवान् हूं यह सोच रहे हैं अज्ञानी। जिनको अपने स्वरूपका पता नहीं है। अपने उस स्वरूपमें क्षण भरको भी यदि दृष्टि जाय तो भव भवके बांधे हुए कर्म नष्ट हो जाते हैं। मैं ज्ञान स्वरूप हूं इसका जिसे पता नहीं है वह अपनेको नानारूप कल्पना करता है। मैं रूपवान् हूं, मेरे आत्मामें रूप तो है ही नहीं। यह तो एक ज्ञानज्योतिर्मय है। इस स्वरूपकी समझ बने तो फिर इस ज्ञानमात्र आत्माके अनुभवमें क्या विलम्ब? यह सोचता है कि मैं शूरवीर हूं। आत्मामें एक वीर्यनामक शक्ति है जिसका घात करने वाला अंतरायकर्म है। उस वीर्यतरण को क्षयोपशम हो तो आत्मामें बल प्रकट होता है और जिसके क्षयोपसम हो जाता है उसके

अनन्त बल प्रकट होता है। यही वीर्यशक्ति जब विकार होती है तो संसारके क्लेशरूपमें भी प्रकट होती है। पर शूरता जो है वह संसारकी शूरतासे शूरता नहीं है आत्माकी। आत्मामें तो भेदविज्ञानका बल हो तो शूरवीरता है। यह जीव अपनेको पंडित मानता है कि मैं पंडित हूं। केवलज्ञानसे पहिले जो ज्ञान है वह सब अल्पज्ञान है। कितना जान लोगे? असंख्यात जान लोगे, पर अनन्त तो न जानोगे। असंख्यातसे अनन्त कितने गुणा बड़ा है? अनन्तगुणा बड़ा है। तो सभी जीवोंको समझो कि अल्पज्ञ हैं। बुद्धिपर, अक्लपर, विद्यापर क्या गर्व करना? पंडित शब्दका अर्थ है। 'पंडामइतः इति पंडितः।' पंडित बोलते हैं विवेकी पुरुष को। जो पुरुष विवेकी हो उसे पंडित बोलते हैं। मैं पंडित हूं, यह मिथ्या अभिप्राय है। मैं दिव्य हूं, सबमें श्रेष्ठ हूं। अरे ये सब जीव समान हैं। सही दृष्टि कैसे होगी? सब जीव शक्तिमें तो श्रेष्ठ हैं ही और व्यक्तिमें भी आपको क्या पता? अपनी बात अपनेको बड़ी लगा करती है और मोह का और रागका है उदय, इस कारण अपनी कलापर गौरव हुआ करता है। पर क्या कला है? कौनसी श्रेष्ठता है? यह व्यर्थका आशय है जो यह जीव समझता है कि मैं सबमें श्रेष्ठ हूं। यह मानता है कि मैं क्षपण हूं। क्षपणक कहते हैं दिगम्बर साधुको। मैं दिगम्बर साधु हूं—ऐसा समझता हो तो मिथ्यात्व है। क्यों मिथ्यात्व है कि ऐसी श्रद्धा करने वालेकी श्रद्धा बाहर-बाहर घूमती रहती है। मैं साधु हूं, ये लोग श्रावक हैं, इन घ काम पूजन का है और कहीं अष्टद्रव्योंकी पूजा हो रही है तो और तनकर बैठ जावे क्योंकि शरीरमें आत्मबुद्धि है कि मैं साधु हूं, ज्ञानका बड़ा ऊंचा प्रताप है। साधु होकर भी यह भावना रहे कि साधु तो एक पर्याय है, नाटक है। इस परिणतिमें आए हैं, पर मैं तो जैसे सब जीव हैं वैसा ही एक सत् हूं—यह उनकी दृष्टि आनी चाहिए। मैं दिगम्बर हूं, ऐसा आशय भी मोहका आशय है। मैं तो एक जाननशक्ति वाला तत्त्व हूं, ऐसा अन्तरमें प्रवेश कर जाय उपयोग तो उसका मोह मिथ्यात्व सब कट जाता है। कोई माने कि मैं बंदक हूं। बंदक शब्दकी प्रसिद्धि बौद्ध आचार्योंमें है। मैं बौद्ध साधु हूं, मैं जैन साधु हूं। देखिए सब परिणतिका लगाव किया जा रहा है और परिणति का लगाव करने वाला जितना भी ज्ञान है वह सब मिथ्याज्ञान है।

अभी आप घरमें रह रहे हैं, वहां बहुतसी सम्पदा सम्बन्धी या अन्य प्रकारकी उलझने पड़ी रहती हैं, तिस पर भी जब अपनेको अपने एकत्वका ख्याल आए कि मैं तो केवल चैतन्यस्वरूपमात्र हूं तो देखिए उस ही समय सर्व संकट टल जाते हैं। कोई संकट टालने दूसरा नहीं आता है। खुदसे ही

संकट आए और खुद ही संकटोंको दूर करोगे।

यह मिथ्यादृष्टि जीव धर्मकी धुनमें भी नाना रूपोंमें अपनेको मानता है। मैं श्वेताम्बर हूं। या दिगम्बर हूं या बौद्ध हूं या संन्यासी हूं–ऐसी नाना कल्पनायें कर डालता है यह। परमार्थतः न मैं श्वेताम्बर हूं, न मैं दिगम्बर हूं, न मैं बौद्ध हूं, न मैं संन्यासी हूं, न मैं पुरुष हूं, न मैं स्त्री हूं। मैं तो केवल शुद्धज्ञान शक्तिमय आत्मा हूं। आत्मस्वरूपसे अविदित मोही प्राणी ही अपनेको नानारूप मानता है।

एक पुरुष स्त्री थे, खटिया पर पड़े हुए गप्पें हो रही थीं। स्त्री बोली अपने एक बच्चा हो तो वह कहां लेटे ? तो खटिया की एक ओर जरा सरक गया, बोला यहां लेटेगा। यदि दूसरा हो गया तो ? सो और थोड़ा सरक गया। तीसरा हो गया तो ? इस बार ऐसा सरका कि वह नीचे गिर गया। कभी ऐसा होता है कि थोड़ा ऊपरसे गिरो तो भी चोट लग जाती है, हड्डी टूट जाती है। तो वह ऐसा गिरा कि उसके पैरकी हड्डी टूट गई। बोला अरे हमें बच्चा नहीं चाहिए। जिसकी कल्पना ही केवल की तो पैरकी हड्डी टूट गई और हो जानेमें न जाने क्या हालत हो ? जिसके लड़के हो गए हैं वे लड़के यदि अपना भार संभाले हैं तब तो वहां कुछ व्यग्रता नहीं होती है और जो लड़के अपना भार नहीं संभाल सकते, कोई योग्यता विशेष भी नहीं है तो ऐसे पुत्रोंसे तो जीवन ऊब जाता होगा। और फिर उनसे भी होशियार, उनसे भी अच्छे धर्मप्रेमी लड़के हैं, उन सबको मान लो कि ये मेरे लड़के हैं सबको मान लो कि ये मेरे हैं तो आपकी सेवा करने वाले सैकड़ों हो जावेंगे और यह मान रखा है कि घरमें ही जो बच्चे हैं वे ही मेरे हैं सो कुछ ऐसा भी होता है कि जो ज्यादह साथ-साथ रहते हैं उनमें फिर स्नेहकी बुद्धि नहीं रहती है। विरले ही ऐसे होंगे जो जो सदा साथ रहते हैं और प्रेम बना रहता हो। जो बिछुड़े हुए रहते हैं, कभी-कभी मिलते हैं उनमें देखो कितनी प्रीति बढ़ती है। अभी हम चार दिनको ठहरें तो लोगोंसे कितनी प्रीति बढ़े और चौमास भर या चार माहको रह जायें तो विशेष अनुरागी होंगे कोई तो वे ही एक समान अन्त तक अनुराग रखेंगे। भैया ! एक बात कही है।

ज्यादह जो सहवास होता है उसमें ज्यादह स्नेह नहीं बढ़ता। सो यह मूढ़ आत्मा अपनेको नाना पर्यायोंरूप अनुभव करता है। यहां यह तात्पर्य है कि यद्यपि व्यवहारनयसे इसकी विभाव पर्याय है फिर भी परमार्थतः वही एक सर्वत्र है। बालकसे जवान हुए तो शरीर अलग हो गया और आत्मा अलग हो गया, ऐसी बात नहीं है। एक ही जगह है। जवानसे बूढ़े

हो गये तो भी वहां वह एक है। पहिले जवान थे तो वही थे अब बूढ़े हो गए तो वही हैं। मरने के बाद जो और भव आया सो वहां भी वही है। तो ऐसा निश्चयनयसे वीतराग सहज आनन्द एकस्वभावरूप परमात्मा से भिन्न कर्मोंके उदयसे उत्पन्न तरुण, वृद्ध आदि विभाव पर्याय जो हेय हैं उन्हें अपने आत्मामें लगाते रहना कि यह मैं हूं यही भवमें भटकनेका यत्न है। ऐसा कौन मानता है ? मोही आत्मा, जो पर्यायबुद्धि वाले हैं, जिनको दृष्टि अपने आपके सहजस्वरूपकी ओर नहीं है, सो ख्याति के, पूजा के, लाभ के अनेक प्रकारके विभावपरिणामोंके आधीन बन जाते हैं और वे परमात्माकी भावनासे च्युत हो जाते हैं।

जणणी जणणु वि कंत घरु पुत्तुवि मित्तु विदव्वु।
मायाजालुवि अप्पणउ मूढउ मण्णइ सव्वु ॥८३॥

वह मूर्खजीव अपने को मानता कि मैं माता हूं। इस आशयमें संक्लेश ही पल्ले पड़ता है, क्योंकि बच्चा है स्वतंत्र। उसके परिणाममें आ गया तो मां की सेवा करे, न आ गया तो न करे। मगर वह यह भाव लिए है कि मैं मां हूं। मेरा अधिकार है बालकोंपर, और बालकों पर बस चलता नहीं तो यह प्राणी दुःखी हो रहा है। इसी प्रकार माने कि मैं पिता हूं। तो पुत्र जब अपनी इच्छाके अनुकूल नहीं चलता तो यह दुःखी होता है। सर्व दुःख मान लेने पर ही हो जाते हैं। जब यह जीव मान लेता है कि मैं स्त्री हूं, मैं पुरुष हूं तब यह दुःखी होता है।

देखो भैया ! सीता जी की अग्निपरीक्षा हो गई, तब सीता जी ने श्री रामचन्द्र जी की भी अपेक्षा नहीं की। मोह, मोहसे रिश्ता रखता है। मोह न हो तो कोई रिश्ता नहीं है। विवाह के समय सात-सात वचन होते हैं। हम तुम्हें धर्मसे न रोकेंगे, तुम्हारी जीवनभर रक्षा करेंगे आदि आदि। और कहो रात्रि ही गुजर पाये, सुबह होते ही वैराग्य हो जाय तो वह अपना जंगल चला जा रहा है। अरे-अरे कहां जाते हो ? तुमने तो वचन दिया था कि हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। अरे वह वायदा मोहने किया था। वह मोह अब नहीं रहा। मोहसे लड़ो, मुझसे लड़ने की जरूरत नहीं है।

मोह जब मिट जाता है, राग जब मिट जाता है तो उस साधुका नाम द्विज है। मानो दूसरी बार जन्म उसका हुआ। पहिले जन्मसे घरमें पैदा हुआ था और दूसरी बार तब जन्म हुआ। जब घरका त्याग कर दिया जब श्रावकभाव लिया तब दूसरी बार जन्म लिया। तो जैसे आप हम पहिले कुछ और थे, पता नहीं है किसी जन्ममें दूसरे कोई अच्छे होंगे। हम आपमें पहिले जन्ममें कोई साधु होगा, कोई सेठ होगा, कोई धर्म करने वाला

होगा। और उस पूर्वभवमें किसी से कुछ वायदा कर आये हो तो क्या अब उस वायदे को निभा सकते हैं ? नहीं, क्योंकि दूसरा जन्म हो गया है। इसी प्रकार साधु महाराजने पहिले जो वायदे किए हों, साधु हो जाने के बाद जन्म चूंकि दूसरा हो गया इसलिए वायदा निभाने को झूठा न कहेंगे। गृहस्थावस्थामें किसीको १० हजार रुपया देने का वायदा किया कि भाई तुमको कल १० हजार रुपया देंगे —अपना काम चलाना और वह हो गया दो चार घंटे बाद विरक्त तो क्या यह कहा जायगा कि यह आदमी बड़ा झूठा है ? इसने तो देने का वायदा किया और अब हो गए साधु। अरे अब तो वह आदमी ही नहीं रहा। अब तो वह हो गया परमेष्ठी, संत, योगी, संन्यासी। सब कुछ छोड़ दिया अब क्यों उसमें दोष बांधों ? जितना भी नाता रिश्ता है वह सब मोहका मोहके साथ है।

यह मूढ़ जीव मानता है कि मैं मां हूं, मैं पुत्र हूं, मैं स्त्री हूं, मेरा घर है, मेरा पुत्र है, मेरे मित्र हैं, मेरे स्वर्णादिक बहुतसा द्रव्य है। ऐसे इस मायाजालको भी अपना मानता है। इस अशुद्ध को भी, इस कृत्रिमको भी यह अपना स्वीकार करता है। कौन ? यह मोही प्राणी। देश विदेशको यह मानना चाहता है कि ये मेरे हैं, इस प्रकार सर्व विश्वपर एकछत्र यह राज्य करना चाहता है। एक आया कोई राजहँस, तालाबके किनारे बैठा। मेंढक पूछते हैं कहो भाई कहां से आए हो ? बोला, मानसरोवरसे। मानसरोवर कितना बड़ा है ? कहा बहुत बड़ा। तो पहिले उसने अपना पेट फुलाया और कहा कि इतना बड़ा ? अरे इससे बड़ा है। फिर और पेट फुलाया, कहा इतना बड़ा है ? अरे इससे भी बड़ा है, फिर तीसरी बार ऐसा फुलाया कि पेट फट गया और प्राण चले गए। अब क्या पूछें कि कितना बड़ा है ? तो जीव अपना बड़प्पन गँवा देता है। जिन बातोंसे उन बातोंसे अपनेको बड़ा मानता है उन बातोंके बड़प्पनकी दृष्टि होने से पुण्य क्षीण होता है और पाप बढ़ता है किन्तु अपने आपके रत्नत्रयकी वृद्धिसे अपना जो बड़प्पन मानता है उस का पुण्य बढ़ता है। तो यह जीव मायाजाल को भी, अशुद्ध को भी अपना सर्वस्व समझता है। पर है यह अपने इस आत्मासे अत्यन्त भिन्न।

भैया ! इन समस्त परपदार्थों की परिणतिसे इस मेरे आत्माका कोई सुधार नहीं होता। शुद्ध आत्मासे ये अत्यन्त भिन्न हैं। माता आदिक पर-स्वरूप हैं, हेय हैं, समस्त नारकादिक आत्माके कारण हैं। साक्षात् उपादेय-भूत निराकुलतारूप पारमार्थिक सौख्यसे भिन्न हैं। ऐसे इस वीतराग परमानन्दमय आत्माके एक स्वभावसे गड़बड़को यह गड़बड़ प्राणी जोड़ता है। पर अपने स्वरूपको देखो, यह इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं है। इन्द्रियां

अपना व्यापार छोड़ सकें तो आत्माका ज्ञान हो सकता है। इन्द्रियोंसे आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है। यह आंखों से देखा नहीं जा सकता है। किसी भी इन्द्रियसे आत्माको जाना नहीं जा सकता है। यह आत्मा तो अतीन्द्रिय है और अतीन्द्रिय ज्ञानद्वारा गम्य है। जैसेमें रागद्वेष उत्पन्न न हों ऐसा समता परिणाम ही उपादेय है।

यह अज्ञानी जीव माता, पिता, पुत्र, स्त्री, घर आदिक जितने भी परस्वरूप हैं वे भिन्न हैं और वे हेय हैं, जो नरकादिक दुःख हैं उनके कारण हैं फिर भी यह उनको अपने आत्मामें जोड़ता है। कहां तो आत्माका शुद्ध ज्ञानमात्र स्वभाव पवित्र जिसके ध्यानमें योगीजन सदा रमण करते रहते हैं, जो वास्तविक सुखसे भिन्न है, अनन्त सुखका भण्डार है, उपादेयभूत अनाकुलतारूप परमार्थ सुखमय है, किन्तु यह बहिरात्मा उसमें नानारूप लगाये फिरता है कि मैं मां स्वरूप हूं, पिता स्वरूप हूं, पुत्र स्वरूप हूं। जैसे कभी कोई ऐसी समस्या आ जाय कि अपनी ही चीजपर अपना वस न रहे तो कैसा दुःख होता है कि अपनी ही तो चीज और अपना वस नहीं चलता। जैसे कभी सरकार कन्ट्रोल लगादे कि ५ तोलेसे ज्यादह सोना कोई नहीं रख सकता है और घरमें रखा है १०० तोला सोना तो वह बेकार है। अगर दिखाते हैं, बेचते हैं या पहिनकर दिखाते हैं तो इस अपराधमें सरकार पकड़ लेगी। तो अपनी ही चीज है और उस पर अपना अधिकार नहीं है। इसी तरह इससे और निकटकी बात अपनी आत्माकी बात है पर उस पर भी अपना अधिकार नहीं। जान रहे हैं कि मुक्तिका मार्ग यह है। रागद्वेषरहित निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमय उपयोग जमाना यह सब झंझटोंसे मुक्तिका उपाय है, किन्तु यह नहीं किया जा सकता। ऐसी कर्मविपाककी प्रेरणा है। इसलिये यह मोही आत्मा अपने शुद्ध आत्मतत्त्व भावनासे च्युत होकर मिथ्याआशयसे प्रेरित होकर यह मैं क्या हूं? मूर्ख हूं, पंडित हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं, मां हूं, बाप हूं या और-और रूप अपने को मानने लगता है। और है क्या वहां? केवल ज्ञान चैतन्यप्रतिभास और कुछ है नहीं इसके अतिरिक्त। मगर कल्पना ऐसी बनाली कि अपनेको नानारूप समझता है।

आत्मा तीन प्रकारके होते हैं—(१) बहिरात्मा, (२) अंतरात्मा, (३) परमात्मा। बहिरात्मा तो वह है जो अपने से बाहरमें अपना आत्मा माने और अंतरात्मा कहते हैं अपने ही अन्तरणमें अपनी आत्मा मानने को, और परमात्मा उसे कहते हैं जिस आत्माका पूर्ण विकास हो गया हो। अब तीनों प्रकार की आत्मावोंमें से यह बतलावो कि कौनसा हेय है और

कौनसा उपादेय है तो हेय क्या है ? इन तीन प्रकारकी आत्मावोंमें से बहिरात्मा हेय है, जो बाहरमें अपना आत्मा मानें। मित्र हैं तो मैं हूं, पुत्र है तो मैं हूं, मकान है तो मेरा है, परिवार है तो मेरा है, शरीर मेरा है, ऐसी जिसकी बुद्धि है उसे कहते हैं बहिरात्मा। तो हेय, दूर करने लायक, निन्द्य हैं। बहिरात्मा और उपादेय क्या है ? पानेके योग्य क्या है इन तीनों आत्मावोंमें से ? पानेके योग्य है परमात्मा। अब बचा अंतरात्मा, वह क्या है ? वह है एक माध्यम। अंतरात्मा बनकर दोनों काम निभाये जाते हैं। बहिरात्माको छोड़ना और परमात्माको ग्रहण करना।

इन दोनोंके पानेका उपाय है अंतरात्मा होना। इस तथ्यसे अनभिज्ञ यह बहिरात्मा निजशुद्ध आत्मद्रव्यकी भावनासे शून्य होता हुआ मन, वचन, कायके व्यापारमें परिणत होकर अपने आपमें नाना पर्यायों को लगाता फिरता है। और क्या करता है ?

दुक्खहं कारण जे विसय ते सुहहेउ रमेइ।
मिच्छादिट्ठिउ जीवडउ इत्थु ण काइँ करेइ ॥८४॥

दुःखोंका कारणभूत जो विषय हैं उनसे सुख पानेके लिए यह मिथ्यादृष्टि जीव उनमें रमता है। विषय सुखके लिए हैं ऐसी कल्पना कर ली गई, सो दुःखोंके कारणभूत जो विषय हैं उन विषयोंको सुखके हेतुभूत मानकर यह उनमें रमता है। कौन रमता है ? मिथ्यादृष्टि जीव। इन्द्रियोंके विषयभूत जो पदार्थ हैं उन्हें देखो परखो, वे क्लेशके ही कारण सिद्ध होंगे। बहुत बढ़िया राग सुना। जब सुन रहे हैं, सुहा रहा है तो मनमें एक हर्षकी उछल पैदा होती है। वह हर्षकी उछल आनन्द नहीं है, वह दुःख है। दुःख होता है तब यह जीव उछलता है। और शांति हो तो यह जीव विश्राम पाता है। तो चाहे राग सुननेमें बढ़िया बन जाय और उसमें उछलकूद होने लगे तो भी यह प्रवृत्ति शांतिसे होती है या दुःखके कारण होती है ? दुःख के कारण होती है पर यह मोही जीव उस दुःखका अंदाज नहीं करता।

भैया ! विषयोंमें जितनी प्रवृत्ति होती है वह वेदना न सह सकने के कारण होती है। इच्छा हुई कि मैं बढ़िया गाना सुनूँ, बढ़िया गाना गाऊँ। तो इस इच्छाकी ऐसी वेदना हुई कि उस वेदनाको वह बरदाश्त न कर सका। स्वयं गाना सुनाना शुरू कर दिया या सुनना शुरू कर दिया। अगर विश्राममें होता तो न गानेकी प्रवृत्ति करता और न सुननेकी प्रवृत्ति करता। चक्षुरिन्द्रियका विषय देखो। इच्छा कुछ हो गई, सिनेमा देखना या अमुक खेल देखना या अमुकरूप देखना तो देखनेकी इच्छासे एक वेदना उत्पन्न हुई, उस वेदनाको बरदाश्त नहीं कर सका, सो यह देखने लगता है। तो

शांतिसे कोई देखता है क्या ? नहीं, वेदना उत्पन्न होती है तब देखता है। तो ये सब कार्य वेदनासे होते हैं।

अब एक व्यर्थकी बात और देख लो— बढ़िया इत्र सूँघ लिया। इत्र सूँघने में कुछ अटका था क्या ? यदि नाकमें इत्रकी सुगंध न जाती तो वह दुर्बल हो जाता क्या ? कोई वेदना बन रही थी सो इत्रको सूँघे बिना यह विश्राम नहीं लेता। बढ़िया चाहिए, इससे बढ़िया सेन्ट गुलाब चाहिए। अरे नाकमें इत्रकी सुगंध डाले बिना कुछ अटका तो नहीं था। मगर वेदना जो उत्पन्न हुई उसको बरदाश्त नहीं कर सका। सुखी कौन है ? जो दुःखी है वह तो दुःखी ही है किन्तु जिसको आराम है वह आराममें सौ गुनी इच्छाएँ पैदा किया करता है। नाना मन जो चलते हैं वे आराममें ही तो चलते हैं। तो यह जो मन चला वह वेदनाके कारण ही तो चला, अगर अंतरणमें वेदना न जगती तो इन विषयोंमें मन क्यों लगता ?

रसना इन्द्रियकी बात देखो। मीठा खानेको मिल गया। उस कालमें खानेकी वेदनाको नहीं सह सका, उस इच्छाको नहीं सह सका, इसलिए कमानेकी प्रवृत्तिका परपरिणाम क्या निकला ? पहिली बात तो यह है कि खर्चा अधिक बढ़ा तो कमानेकी चिंता बढ़ी। नाना प्रकारका भोजन किया, स्वाद लिया तो उसमें तो खर्चा ही बढ़ता है। खर्चा बढ़ा तो शल्य हुआ, कमानेकी और चिंता बढ़ी। फिर खर्च करने पर भी चीजें नहीं मिला करती हैं। मीठा, स्वाद वाला भोजन करनेमें शांति भी नहीं मिलती है। खब सटक सटक कर खा रहे, खानेमें भी बड़ी वेदना हुआ करती है। शांतिपूर्वक धीरे धीरे नहीं खा सकते हैं। बिना वेदनाके कोई भोजन करनेमें सड़फ-सड़फ करेगा क्या ? तो खानेकी जो धुन बनती है वह वेदनाके कारण बनती है। और खा लिया मीठा, पी लिया मीठा, मीठा दूध, मीठा रस पी लिया, पकवानका स्वाद ले लिया, आसक्तिमें मात्रासे अधिक ले लिया जाता तो अंतमें वह अवगुण करता है, बीमार बनाता है, आलसी बनाता है तो उसका फल कुछ अच्छा नहीं निकलता है।

ऐसी ही स्पर्शन इन्द्रियकी बात है। इन सब इन्द्रिय और मनके जो विषय हैं ये वेदनाके कारण भोगे जाते हैं। कुछ बड़प्पनके कारण नहीं भोगे जाते हैं। दुःखी हैं इसलिए इन्द्रियोंमें लगते हैं। जैसे किसीको बुखार हो तो वह चाहता है कि मैं पसीना लूँ और जिसे बुखार नहीं है वह पसीना लेने का उद्यम करता है क्या ? नहीं। जिसके फोड़ा या घाव हो वही मलहम पट्टी बांधता है। और जिसका हाथ साफ है वह क्या मलहम पट्टी बांधेगा ? नहीं, और जिसकी आंखोंमें जरा कम रोशनी होगी वही अंजन लगायेगा।

जिसके कान बहिरे होंगे वही बकराका मूत्र कानमें डालेगा। और जिसको कोई रोग नहीं है वह कोई इलाज नहीं चाहेगा। तो जैसे वेदना बिना ये उपचार नहीं बनते हैं इसी तरह विषयोंकी वेदनाके बिना विषय भोगते नहीं बनते।

वह जीव धन्य हैं जिनको अल्पायुमें ही विषयोंमें उपेक्षाकी बुद्धि होती है और त्याग व्रत संयमपूर्वक अपना जीवन निभाते हैं। सारभूतमार्ग यही है। जो जब चेते तभी भला है तो दुःखोंके कारणभूत जो ये विषय हैं उन विषयोंके सुखके अर्थ बहिरात्मा ही प्राप्त करते हैं और उनमें रमते हैं तथा उन दुःखोंक स्वरूप वाली बुद्धिको वे निश्चयसे सुखरूप ही मानते हैं। सो वह मिथ्यादृष्टि जीव अपने विषयोंकी पूर्तिके लिए कौन कौनसे पापोंको नहीं करता है? अर्थात् वह सभी पापोंको करता है। अब यहां तात्पर्य यह मानों कि यह मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्माके असली सुखका अंत नहीं पा सकता। जिस सुखसे परम समताका रस झरता है, रागद्वेषरहित, विकल्प-रहित शुद्ध ज्ञानमात्र आत्मस्वभावकी भावनासे एक अलौकिक आनन्दप्रकट होता है, उस आनन्दको तो मिथ्यादृष्टी ने जाना नहीं तो वे दुःखरूप जो विषय हैं उनको सुखका कारण मानते हैं।

जैसे एक छोटा बालक बड़े बालकको गाली देता है और बड़ा बालक उसके चांटे रसीद कर देगा। तो चाहे वह दुःख न सह सके पर यही उपाय करेगा कि और गाली दे दें। तो गाली तो उसके लिए दुःखका कारण है, पर वह गाली देनेको सुखका कारण मानता है। पिटनेके बाद जो दुःख उत्पन्न हुआ उस दुःखका इलाज वह गाली देना ही समझता है। तो फिर गाली देता और पिटता। फिर पिटनेकी वेदना नहीं सह सका तो पिटनेकी वेदना का दुःख दूर करनेका उपाय उसने गाली देना समझा तो फिर गाली दिया। इसी तरह जीवके विषयोंकी इच्छासे तो दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःखको मेटनेके लिए विषयोंकी वाञ्छा करता है तो यों यह मिथ्यादृष्टि जीव विषयों को भोगता है। तीन प्रकारकी आत्माका प्रतिपादन करने वाले इस महा-धिकारमें मिथ्यादृष्टि जीवकी परिणतिका व्याख्यान किया। मिथ्यादृष्टीकी कैसी चर्या है? कैसा विचार है? कैसा लक्ष्य है? इन सब बातोंका यहां वर्णन किया जा चुका है।

अब सम्यग्दृष्टि जीवकी कैसी भावना होती है? इसके व्याख्यानकी मुख्यता करके अब आगे ८ सूत्रोंमें सम्यग्दृष्टिकी चर्या घटायेंगे।

काल लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोह जलेइ।
तिमु तिमु दंसण लहइ जिउ णियमें अप्पु मुणेइ ॥८५॥

समय पाकर हे योगी ! जैसे-जैसे मोह लगता है वैसे-वैसे ही यह जीव दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, और फिर नियमसे अपने आत्मा को जानता है। जैसे कोई हाथमें ही स्वर्णकी डली लिए है, मुट्ठी बंद किए है भूल जायें कि वह स्वर्णकी डली कहां है तो सब जगह ढूंढ लेता है और अपनी मुट्ठी खोलकर नहीं देखता है। ऐसी ही बुद्धि बन जाती है। इसी तरह मिथ्यात्वमें ऐसा ही विषय बनता है कि खुद तो है आनन्दका निधान सो उसकी ओर तो दृष्टि ही नहीं करता है, और बाह्य अर्थोंकी ओर अपना झुकाव बनाता है। यह जो मनुष्यभव पाया है यह कितना दुर्लभ है ? हम और आप पहिले निगोद अवस्थामें थे। ये जो भी जीव हैं इनमें ऐसा कोई नहीं है जो पहिले निगोद न था। प्रत्येक जीव निगोद पर्यायमें पहिले था। निगोद जीव किसे कहते हैं ? आपने देखा होगा आलू, उसमें एक सूईके नोक के बराबर हिस्सेमें अनन्त निगोद जीव हैं। या जो कोमल पत्ते हैं उनके तिल-भर हिस्सेमें अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं। यह तो आधार वाले निगोदिया जीवोंकी बात कह रहे हैं, पर निराधार जो निगोद जीव हैं वे इस पोलमें सब जगह ठसाठस भरे हैं। वे आंखोंसे नहीं दिखते, पानीसे नहीं मरते, किसीसे टक्कर नहीं होती। वे स्वयं ऐसे हैं कि एक सेकेन्डमें २२-२३ बार जन्म मरण करते हैं। ऐसा ही जन्म मरण हम आपका भी था।

ये निगोद एकेन्द्रिय जीव हैं, वनस्पतिकाय जीव हैं। प्रायः वनस्पतिकाय इसी तरहके होते हैं। एक तो प्रत्येकवनस्पति और एक साधारण-वनस्पति। तो प्रत्येकवनस्पति तो हरीका नाम है। भक्ष्य हो या अभक्ष्य हो, आलू हो या सेम हो, मटर हो, सब प्रत्येकवनस्पति हैं। और साधारण वनस्पति वे हैं जिनका शरीर आंखों न दिखे। एक शरीरके आधारमें अनन्त निगोद जीव हैं, वे हैं सब साधारणवनस्पति। तो साधारणवनस्पति जिस समय जिस प्रत्येकमें रहते हैं उस प्रत्येकका नाम साधारण-वनस्पति सहित प्रत्येक अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति है और जिस हरीमें निगोद जीव नहीं रहते, जो खाने योग्य हरी है उसे कहते हैं साधारणरहितप्रत्येक याने अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति।

अनन्तकालसे ये एकेन्द्रिय जीव निगोदमें रह रहे हैं। कुछ सुयोग अपने आप मिला, कर्मोंकी गतिसे अपने आप कुछका कुछ परिवर्तन होता रहता है। उस निगोद जीवको सुयोग मिला तो वह एकेन्द्रियमें उत्पन्न हो गया, पृथ्वी हो गया, जल हो गया, अग्नि हो गया, वायु बन गया और वनस्पति बन गया। एकेन्द्रियसे छूटा कुछ और सुयोग मिला तो यह जीव दो इन्द्रिय हो गया। उसमें एक स्वादकी शक्ति आ गई। रसना और आ

गई। जैसे केचुवा है, चावलमें निकलने वाली लटें हैं। तो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय इनसे कर्म कौन चाहता है ? कर्मोंका भार कम हुआ और सुयोग मिला तो दो इन्द्रियसे बढ़कर तीन इन्द्रियमें आ गया। नाक और मिल गई। इसमें चींटी-चींटे अपनी नाक लिए फिरते हैं। कर्मोंका और क्षयोपसमम हुआ तो तीसरी इन्द्रियसे छूटकर चारइन्द्रिय बन गया, इसमें मक्खी मच्छर आ गए। इन काटने वाले मच्छरोंके आंखें हैं। इनकी आंखें कितनी बड़ी होंगी सो अन्दाज करलो। मच्छरोंसे बड़ी होंगी ? (हँसी) अरे बहुत छोटी होती होंगी। एक बहुत छोटा बूंद हो, या कोई बहुत पतली चीज हो तो वह भी बहुत बड़ी है उसकी आंखों के सामने। इतनी आंख हैं फिर भी जितना हाथी देखता है उतना ही तो वे मच्छर देखते हैं। तो कुछ और सुयोग मिला तो यह जीव पांच इन्द्रिय वाला हो गया, मन भी मिल गया, असंज्ञी पंचेन्द्रिय हो गया, इसके इन्द्रियां तो पांचों हैं, किन्तु मन नहीं है। फिर सुयोग मिला तो संज्ञी जीव हुआ।

भैया ! अपने पर घटावो कि किस किस गतिसे हम आप खिंचकर आये हैं ? यह जीव संज्ञी भी बन जाय तो अपर्याप्तक मनुष्य हो जाता तो भी क्या करता। ये कहां पैदा होते हैं ? स्त्रीके शरीरमें जगह-जगह जैसे कांख इत्यादिमें ये पैदा होते हैं। जो आंखों नहीं दिख सकते, पकड़ नहीं सकते कि लो यह रखा है। कीड़ों जैसा रखा है। निगोद जैसी जिन्दगी है। संज्ञी भी हो गये पर अपर्याप्तक भी हो गए तो उससे फिर क्या सिद्धि होगी ? संज्ञी होनेके बाद फिर विशेष मौका मिला तो फिर पर्याप्त बन गया। पर्याप्त और संज्ञी तो बहुतसे पशु हैं, पक्षी हैं। ऐसे ही बन गए तो भी वहां धर्मलाभ उत्कृष्ट नहीं है। तो पर्याप्त होने पर भी मनुष्यभव पा लेना और कठिन है। मनुष्य भी हो गए और देश मिल गया खोटा। खोटे देशमें जन्म हो गया तो क्या करोगे ? बन गए मनुष्य और ठंडे मुल्कमें, समुद्रके भीतर ऐसे टापूमें जहां कि कुछ उत्पन्न नहीं होता ऐसे कुछ मनुष्य होते तो क्या सिद्धि थी ? मनुष्य भी हो गये पर उत्तम देश न मिला तो क्या ठीक रहा ? और जिसे उत्तम देश भी मिल गया उसे अब भी चैन नहीं रहती है, खोटे, छोटे जीव अपनी पर्यायोंमें आत्मबुद्धि करके चैन माना करते हैं पर सम्यग्दृष्टि पुरुष वस्तुके यथार्थस्वरूपको जानता है। वह तुच्छ जनोंसे प्रीति नहीं करता। उत्तमदेशमें उत्पन्न हो वहां भी उत्तम कुलमें उत्पन्न हो, इतनी तक भी बातें बेकार हो सकती हैं यदि शुद्ध उपदेश न मिला तो।

भैया ! शुद्ध आत्माका उपदेश मिलना यह सबसे कठिन बात है। सब मिल जाय पर शुद्ध आत्माका उपदेश मिलना कठिन है। सो उत्तरोत्तर

दुर्लभताके क्रमसे यह अवसर मिला है, यह शुद्ध मानवजीवन मिला है, और इसे यों ही विषयोंमें गँवा दें तो यह तो रत्न पाकर खो देने के बराबर है। सो न्यायसे उस काललब्धिको पा लो तो जैसा आगममें बताया है उस विधिसे चलकर मोहको गलावो। इस मोहसे ही जीवपर संकट हैं। इस समयमें हम आपने जो भव पाया है उसे दृष्टि देकर निरखो। मनुष्य हुए, उत्तम देश मिला। यदि समुद्रके किनारे उत्पन्न हुए होते या अन्य स्थान जहां केवल मांससे ही मनुष्य पेट भरा करते हैं तो धर्मकी बुद्धि कहां से आती? उत्तम देश पाया, उत्तम कुल पाया, मांस मदिराका जहां रिवाज है वहां यदि उत्पन्न होते तो यह आनन्द कहांसे आता? धर्मका आनन्द अलौकिक आनन्द है, सो इतना अलौकिक लाभ पाकर भैया! धर्मधारण कर जीवन सफल करो।

जैसे किसी पुरुषके गुण मरनेके बाद या वियोगके बाद समझमें आते हैं, जब तक वह घरमें रह रहा है तब तक उसके गुण समझमें नहीं आते हैं। इसी प्रकार धर्मका महत्व तब समझमें आता है जब संकटोंसे परेशान हो जायें। विरला ही ज्ञानी पुरुष ऐसा होता है जो संकटोंके पहिले ही व्यवस्था बनाले। खैर तब भी धर्ममें रुचि जगे सो भी भला है। मनुष्यका शरण एक धर्मधारण है। सब कुछ अनित्य है, विनाशीक है, मिट जाने वाला है, इस से आत्माको कुछ लाभ न होगा। किनमें अच्छा कहलवाने के लिए धनका संचयका परिश्रम किया जाय? आत्मशांति सबसे बड़ी चीज है। कदाचित् परिवारकी जरूरी परेशानियोंके कारण आत्मशांतिको खोना पड़ रहा है तो विवेक यह कहता है कि उसको समझावो। तुम आवश्यकतावोंको कम करदो। तत्व जरूरतें बढ़ानेमें नहीं है। शौक, शान बढ़ानेमें तत्व नहीं है। अपने धर्मकी ओर रुचि करो। क्या गरीब पुरुष छोटे पुरुष धर्मात्मा हों तो अपना गुजारा नहीं चलाते? बड़ी प्रसन्नतासे चलाते हैं। किन्तु जरूरत बढ़ानेके कारण बड़े-बड़े संक्लेश करने पड़ते हैं। परिवारको समझावो यदि तुम्हारी जरूरतोंकी मनमानीके कारण हैरानी हुई तो समझलो कि यदि विरक्ति आ जायगी तो तुम सबको अकेले रहना पड़ेगा। सबको समझावो व्यवस्था ठीक करो, पर किसी प्रसंगमें अपनी शांति न भंग करो।

यदि शुद्ध आनन्द रहेगा तो पुण्य तुरंत आगे आ जायगा और यदि अशांति ही रहती है तो उस बड़े वैभवसे प्रयोजन क्या मिला? चाहते तो सब शांतिके लिए ही हैं, मगर समागमसे हो गई अशांति सो अशांतिका जीवन कोई सारभूत नहीं है। किस बातकी परेशानी है? धर्मके लिए तुम्हारा समय क्यों नहीं ज्यादा लगता? धर्ममें तुम्हारा चित्त क्यों अधिक नहीं

लगता ? सत्संगतिमें, गोष्ठीमें अधिक चित्त क्यों नहीं लगता ? क्या परेशानी है ? विचार तो करो। परेशानी तो केवल एक ही सबको है कि मैं इन लोगोंके बीच कुछ अच्छा पोजीशन वाला कहलाऊँ। सिवाय इसके और क्या परेशानी है ? केवल एककी चर्चा नहीं है, इस रोगके रोगी ६६ प्रतिशत हैं। जिनकी धुन है कि मैं सबके बीच अच्छी पोजीशन वाला कहलाऊँ। अपनी बात है, विचार करलो, पर यह तो बतलावो कि किन लोगोंमें अच्छा कहलानेके लिए ऐसी धुन बनायी है कि जिसमें कष्ट और परेशानी रहा करती है ? इसका उत्तर दो। किन लोगोंमें भला कहलाऊँ ? ये दिखने वाले जितने हैं उनमें भला कहलानेके लिए ? ये दिखने वाले सब क्या हैं ? ये क्या सदा रहेंगे ? ये यदि अच्छा कह दें तो क्या संकटोंसे पार हो जायेंगे ? कौनसी बात उनसे भलेकी मिल जायगी ? ये तो प्रायः हम आपसे भी अधिक मलिन, अधिक दुःखी हैं। ये जितनी भी दृश्यमान चीजें हैं ऐसी ही सब समझो। समता भी कर लो तो यह सारा लोकसमूह मनुष्यवर्ग हम आपसे भी अधिक मलिन, दुःखमय जीवन वाला है।

जो स्वयं पापी हैं, मलिन हैं जन्ममरणके चक्रमें फंसे हैं, अज्ञानी हैं ऐसे पुरुषोंमें अपना बड़प्पन रखनेसे क्या लाभ है ? इनकी अपेक्षा तो एक ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें बड़े बन जावो तो वह ज्यादा लाभदायक है। हजारों लाखों अज्ञानियोंकी दृष्टिमें हम बड़े बन जायें इसकी अपेक्षा एक दो ज्ञानियोंकी दृष्टिमें हम अच्छे कहला सकें यह ज्यादा लाभप्रद बात है। और फिर देखिये एक दो ज्ञानियोंकी बात क्या, यदि रत्नत्रयरूप परिणति रहेगी, ज्ञान व्यवस्थित रहेगा, निर्मल परिणमन होगा तो मैं अनन्तज्ञानियोंकी दृष्टिमें भला होऊँगा। हजारों मोही अज्ञानी, दुःखी पपी पुरुषोंमें भला दिख जानेसे फायदा क्या है ? भला दिखें तो उन अनन्तज्ञानियोंकी दृष्टिमें भला दिखें तब तो बड़प्पन है। जो स्वयं मोही हैं, मलिन है उनकी निगाहमें भला कहलानेसे कुछ बड़प्पन नहीं है।

तो भैया ! आपने उत्तम कुल पाया और शुद्ध आत्माका उपदेश पाया, कोईसा भी ग्रन्थ उठा लो, छोटा या बड़ा, कोई ग्रन्थ ले लो, हर जगह वीतरागता का ही उपदेश है, पदार्थोंके सम्यग्ज्ञानका ही उपदेश है। ये सब बातें पानी बड़ी कठिन हैं। काकतालीय न्यायकी बात है। काकतालीय न्याय क्या कहलाता है ? एक ताड़का पेड़ था। ताड़का फल जो है वह बड़ी मजबूत डंठलका होता है। उसका गिरना बहुत देरमें होता है। दो चार पत्थरोंकी चोट भी लग जाय तो मुश्किलसे गिरता है। ऐसा है ताड़का फल

और उस पेड़के ऊपरसे एक कौवा निकला और जिस समय कौवा निकला उसी समय वह फल गिरा। लोगोंने कहा देखो कौवेके निकलनेके कारण फल गिर गया। अरे ऐसे हजारों कौवे निकल जायें तो उनका क्या असर ? दो बार पत्थरकी चोट भी लगे तो भी कठिनतासे गिरने वाला फल उस कौवे से गिर जाय यह बात नहीं हो सकती। १०, २०, ५० वर्षमें किसी जगह शायद ऐसी घटना हो जाय। उसी समय तो निकले कौवा और उसी समय फल गिर जाय। यह भी बहुत कठिन बात है।

अपनी इस स्थितिकी दुर्लभता समझनेके लिये और दृष्टान्त ले लो। बैलोंके गर्दन पर जो जुवां रखते हैं उसमें चार छेद होते हैं। दो बैल जुटते हैं। दोनों तरफ उस जुवांमें छेद होते हैं। उसमें लकड़ी फंसा देते हैं ताकि बैल कहीं निकल न जाय। एक बड़ी विशाल नदीके एक तरफके किनारे पर जुवां फेंक दिया जाय और दूसरी तरफके किनारे पर वह डंडा फेंक दिया जाय, जुवां में जो लगा रहता है और कदाचित् बहते बहते उस जुवें में वह लकड़ी अपने आप फंस जाय तो ऐसी बात होना क्या सरल है ? कितनी कठिन बात है ? एक किनारे हैं जुँवा और एक किनारे है डंडा और कहीं अपने आप बहकर उसमें लग जाय तो यह कितनी कठिन बात है ? इससे भी कठिन बात है मनुष्यभव पाना।

भैया ! संसारके जीवोंपर दृष्टिपात तो करो। कितनी किस्मके जीव हैं ? कैसी-कैसी पर्यायें हैं ? कभी बिजलीकी रोशनीमें ऐसा छोटा हरा कीड़ा होता है, इतना छोटा होता है कि जितना छोटा बताया नहीं जा सकता है। सूईके छेदसे निकल जाय इतना छोटा कीड़ा होता है। कहीं बैठ जाए तो मालूम पड़ता है। कहीं दिखेगा नहीं। बस काट लिया तो दिखेगा कि यह है कीड़ा। इतना छोटा वह कीड़ा होता है। इससे बड़ी-बड़ी अवगाहनाके बड़े समुद्रोंमें देखिए, पर्वतों पर देखिए। यह तो तिर्यञ्चोंकी बात है। फिर और जो एकेन्द्रिय हैं। किसकी हम कहानी कहें उन सब जीवोंकी अपेक्षा आप हम कितनी महान् पदवीपर हैं, कुछ गौर तो करो। इतना श्रेष्ठ तन पाया है तो कल्याणके लिए है।

और भी सोचो भैया ! आज ४०-५०-६० वर्षके हम आप हो गए पर हम आपने अपने इस जीवनमें ही कितने बार जन्ममरणकी दशा पाई होगी ? कोई ५० वर्षमें, कोई १० वर्षमें, कोई बीमारीमें पड़ गया, कोई हिन्दु मुस्लिम दंगेमें फंस गया, कोई पानीमें डूबते बचा, कोई अग्निमें जलते बचा कितनी कितनी घटनावोंसे मरणसे बचकर आज यहां बैठे हैं। यदि उन दशावोंमें किसी भी अवस्थामें मरण हो गया होता तो हम और आपके

लिए कहांका यह मंदिर और कहां का यह गांव और कहांका यह मौहल्ला होता ? न जानें कहां पैदा हुए होते ? तब तो यह समागम अपने लिये कुछ न था। सो ऐसा मानकर भी कुछ समय पहिले चेत जावो।

अहो इस जीवको संत्संग न मिलने के कारण, ज्ञानाभ्यास न किया जानेके कारण ऐसा मोह पड़ा हुआ है कि मरते दम तक भी मोह से छुटकारा नहीं पा सकता। कभी ये कोरा कपड़ा बुनते हैं ना ? थान बनाते हैं। कभी किसी जुलाहे को ऐसा सुना है कि वह कपड़ा अंत तक बुन दे। वह उस कपड़ेमें अन्तके चार अंगुल तक नहीं बुनता। उसमें चार अंगुल तक सूत बाहर निकला रहता है। कोरी भी चार अंगुल सूतको तानेमें से अंतमें छोड़ देता है, पर यह मोही जीव चार मिनटको भी यह मोह नहीं छोड़ सकता। मृत्युका समय निकट है फिर भी १०–५ मिनटको भी यह मोह नहीं छोड़ सकता। अच्छा भाई न मोह छोड़ो, मगर इसका फल तो भव-भव में भटकना ही बना रहेगा। यदि इस मोहको यह नहीं छोड़ सकता तो संसारमें इसे दुःख ही मिलते रहेंगे। अगर मर कर सूवर जैसे हो गये तो फिर क्या होगा ? उन सूवरोंकी जिन्दगी देखो। यदि सूवर जैसे हो गये तो जिन्दगीभर दुःख ही रहेगा।

भैया ! बड़ी गम्भीर समस्या है इस जीवनको सफल बनानेकी। इस मनुष्यजीवनको सफल बनानेके लिए यह कोई साधारण समस्या नहीं है। वह तो एक मनको संयत करनेका भाव चाहिए। क्या कम खर्चसे चलें तो जिन्दगी नहीं रह सकती है ? जिन्दगी तो बाह्य आडम्बरों से ठीक नहीं चल सकती।

जिन्दगी तो ठीक चलेगी मनुष्यकी लोकोपकारसे। अच्छा तुलना कर लो, एक मनुष्य ऐसा है कि रेशमके बहुत बढ़िया कीमती कपड़े पहिनता है। पान से मुख रंगे रहता है। मोटरपर या मोटर साइकलपर घूमता है। अपने विषयसाधनोंमें बड़ा चतुर है, पर वह किसीके काम नहीं आता है। एक पुरुष तो ऐसा सामने रख लो और एक पुरुष ऐसा सामने रख लो कि अपना जीवन एक मध्यमपुरुषके जीवनकी तरह व्यतीत करता है। जैसे कि एक गरीब कर सकता है। मोटा खाना, मोटा पहिनना, साफ कपड़े पहिने जिसके घरका खर्च बिलकुल कम है और पुण्यसे सम्पदा जो मिलती है उसका सदुपयोग करे धर्मके लिए और उपकारके लिए, गरीबोंकी मददके लिए और गुप्त सहायता के लिए तो इन दोनों पुरुषोंको सामने रख लो या ये सभामें दोनों पुरुष आ जायें तो भीतरसे लोगोंका आकर्षण किस पर होगा ? सो दिलकी बात बता दो। शान शौक वाले रेशमी कपड़े वालेपर आकर्षण तो

क्या, भीतरमें अनादर बुद्धि जगेगी ? आ गया यह खुदगर्जीका पुतला, उस ने काकतालीय न्यायसे ऐसी काललब्धि पा ली है तो इसे पाकर जैसा पवित्र शासनमें कहा गया है उसके अनुसार मिथ्यात्व अविरति आदिके निकल जाने से जिस प्रकार परमात्मतत्त्वकी उपलब्धि हो, मोह गले, उस प्रकारका काम करना चाहिए।

एक पुरुषका चित्रण मनमें कीजिए। साधारण धनिक पुरुष है, उसके लड़के ने बड़े योगसे विद्याभ्यास किया। कौनसी विद्या ? लौकिक विद्या बी० ए०, एम० ए० पास हो गए। पहिले इच्छा जगी कि मैं अमुक परीक्षा पास हो जाऊँ, केवल परीक्षाकी धुन बन गई, मजुएटकी उपाधि मिल गई। अब उसके बाद इच्छा होती है कि मुझे कोई अच्छा काम मिले। तो मालूम होता है कि विद्यासे बढ़कर सुख कोई बढ़िया काम मिलनेमें है। जब पहिले सालभरका था, ६ माहका था तो उसे अपनी माताकी गोद प्यारी थी। जब कोई भय हो तो झट वह अपनी मां की गोदमें छिप रहता तो उसे पहिले अपनी मां की गोद प्यारी होती थी। जब ढाई तीन वर्ष का होता है तो अब मां की गोद भी उसे प्यारी नहीं रही। जब ६–७ वर्षका बालक हुआ तो विद्या पढ़ने की उसे इच्छा होती है। जब नई-नई बातें मालूम होती हैं तो उसे शौक होता है। अब उसका खेलनेके खिलौनेसे भी प्यार नहीं रहता है। अब उसका चित्त लग गया विद्यामें। जब १६–१७ वर्षका हुआ तब वह परीक्षाके लिए विद्या पढ़ता है। अब उसे विद्या नहीं प्यारी रही, अब तो उसे परीक्षा प्यारी हो गई। उसका पढ़नेसे मतलब नहीं है। उसका मतलब केवल परीक्षासे है। एम० ए० परीक्षा पास करली, अब उसे यह इच्छा होती है कि कोई अच्छी सर्विस मिले। अब उसे डिग्री भी नहीं प्यारी रही। अब तो उसे कोई बढ़िया सर्विस प्यारी है। सर्विसके २–४ साल बीते उसके स्त्रीकी चाह हो गई। अब उसकी शादी हो गई, स्त्री प्रिय हो गई, फिर बच्चे हो गए। अब उसे पुत्र प्यारे हो गए, सर्विस भी प्यारी नहीं रही। क्यों जी काम काज करते हुएमें फोन दफ्तरमें आया। जल्दी घर आ जावो। क्या हो गया सो अभी बतायेंगे। बस काम काज छोड़कर घर चल दिया। अब उसे काम काज नहीं प्यारा रहा। अब उसे ईंटोंका पत्थर प्यारा हो गया। रास्तेमें रोज बड़े पुरुष मिला करते थे और उनसे २ मिनट बातें करके ही जाता था पर उस समय बड़े पुरुषोंसे मिलना तो दूर रहा, उस तरफ दृष्टि भी नहीं करता है, तेजीसे भागा जाता है। फोन आया कि घरमें आग लग गई। अब वह क्या कहता है ? निकालो सब धन, जल्दी निकालो। पहिले नोटोंकी खबर लेगा। यही कहेगा कि जल्दी सामान निकालो। अब उसे घरसे प्रेम

नहीं रहा, क्योंकि जान रहा है कि सब जलकर खाक हो जायगा। अब उसे धन प्यारा हो गया। फिर बच्चोंकी खबर हुई तो धन छोड़ा, बच्चे निकालने लगा। धनका प्यार गया, कोई बच्चा घरके अन्दर ही रह गया, आग तेजीसे बढ़ रही है तो वह तड़फता है, चिल्लाता है, हाय सिपाहियों उस छोटे बच्चे को जल्दीसे निकाल दो, हम तुम्हें २५ हजार रुपया देंगे। और अगर वे कहें अरे भाई तुम्हें बच्चा प्यारा है तो तुम्हीं क्यों नहीं निकाल लाते हो? सो देखो अब उसे अपना शरीर प्यारा हो गया। और वही पुरुष कदाचित् वैराग्य पाकर साधु संत बन जाय और उसे शेरनी, स्यालनी खा रही हो तो उस समय वह किसकी रक्षा करता है? वह रक्षा करता है अपने ज्ञान की। मेरे ज्ञानमें किसी प्रकारका विकल्प न जगे, मेरा ज्ञान केवल ज्ञाता द्रष्टा रहे ऐसा उद्यम वह करता रहता है। अब उसके लिए शरीरसे भी प्यारा क्या हो गया? ज्ञान।

भैया अब ज्ञानसे अधिक प्यारा क्या होगा सो आप बतलावो। यहां तक तो हम ले आए। अब ज्ञानसे भी बढ़कर कोई चीज हो तो बतलावो। सभी हमीं हम तो न कहें।

एक सेठ जी गुजर गए सो घरमें रह गई सेठानी विधवा। अब सभी लोग समझाने आए, देखो जो हुआ सो हुआ, अब चिंता मत करो। सेठानीने मुखियासे कहा कि देखो ये ५० दुकानें हैं इनका किराया कौन वसूल करेगा? मुखिया बोला, इसकी चिंता मत करो, हम सब संभाल लेंगे। यह हजार गाय भैंसोंकी डेयरी है इसका काम कौन संभाले? कोई घबड़ाने की बात नहीं है, सब संभाल लेंगे। यह हजार एकड़ जमीन है, इसकी कौन व्यवस्था करेगा? कुछ घबड़ावो मत, सब संभाल लेंगे। यह चार लाखका कर्जा देना है। इसकी कौन व्यवस्था करेगा? तो वह मुखिया बोलता है, भैया सभी बातें तो हमीं कहते जायें, अब कोई दूसरा कहे। दूसरा कोई कुछ नहीं कहता। तो ज्ञान तक तो हम ले आए कि सबसे अधिक प्यारा है ज्ञान। अब ऐसी चीज और बतलावो कि जिसके लिए लोग ज्ञान को भी अलाभकर समझते हैं। ऐसी कोई चीज नहीं है तो सबसे अधिक प्रिय चीज होती है ज्ञान। इसे छोड़ा, उसे छोड़ा, अंतमें प्रिय मिला क्या? ज्ञान। तो ज्ञान सबसे अधिक प्रिय है।

भैया! जिन किन्हीं उपायोंसे यह मोह गले, गलो, फिर इस प्रकारसे जो शुद्ध आत्मतत्त्व रह जाता है वह ही उपादेय है। ऐसी रुचि बने इसीको कहते हैं सम्यक्त्व। सम्यक्त्व है या नहीं इसकी परीक्षा अपने आपकी आत्मासे करलो। अंततोगत्वा आपकी अंतिम और प्रारम्भिक मौलिक रुचि

तो शुद्ध ज्ञानस्वभावरूपमें रह जाने की जगती है तो सम्यक्त्वमें कोई संदेह नहीं है। सोच लो यदि इसमें कमी है तो अभी सब कमी है। यदि सम्यक्त्व नहीं है तो समझो सब व्यर्थ है। कौन क्या भला कर देगा? घरके लोग, मित्रजन ये सब बने बनेके साथी हैं। यह कोई गालीकी बात नहीं कही जा रही है। स्वरूप ही ऐसा है। कौन आत्मा अपने प्रदेशोंमें होने वाले परिणमनको छोड़कर दूसरे आत्माका परिणमन कर देगा? ऐसा है कोई? स्वयं ही वस्तुका यह स्वरूप है। तो जब यह फैक्ट है कि प्रत्येक पदार्थ केवल अपने परिणमनका स्वामी है तब तुम्हें अन्य पदार्थोंमें रुचि करनेसे लाभ क्या है? अपनी आंतरिक रुचि जगे बिना आत्मतत्त्वका श्रद्धान नहीं होता। घर बिगड़ता है और श्रद्धान बिगड़ता है तो दोनों बातें सामने आने पर घरके बिगड़ जानेका साहस तो करलो, मगर अपना श्रद्धान और ज्ञान बिगड़नेकी बात न आने दो तो समझो कि यह ज्ञान और श्रद्धान ही प्यारा है। प्रियपने की बात मुकाबलेसे देखी जाती है। तो ऐसे शुद्ध ज्ञानस्वरूपको जब यह ज्ञानी पुरुष मानता है, शुद्ध आत्मामें, कर्मोंमें और वैभवमें भेदविज्ञान करता है तो समझ लीजिए कि सर्वसारभूत चीज मैंने ही प्राप्त की।

यहां यह भावार्थ बतलाया है कि जिस उपादेयभूत शुद्ध आत्मतत्त्व की रुचि करनेके परिणामसे यह जीव निश्चय सम्यग्दृष्टि हो जाता है वह ही शुद्ध आत्मा उपादेय है। आप सुन रहे हैं और सुनते हुए में कोई विचित्रतावोंको लिए आनन्द भी आता होगा तो वह आनन्द इन शब्दोंसे नहीं आ रहा है, वे शब्द आपके ही ज्ञान, आपके ही अनुभवमें उतर रहे हैं, उसका आनन्द आपको होता है, शब्दोंका नहीं, वचनोंका नहीं। यह आनन्द तो आपकी अलौकिक कलाका आनन्द है। सो ऐसा अद्भुत परमार्थ आत्मीय आनन्द जब प्राप्त होता है तब परमात्माका मर्म साक्षात् स्पष्ट समझ में आ जाता है। अहो यह है परमात्मतत्त्व। सो अपने जीवनमें किसी भी क्षण यदि उस अलौकिक आत्मज्योतिके कभी दर्शन हो जाएँ तो समझो कि हमारा जन्म सफल है। विकल्पोंसे आत्माकी अनाकुलता का फल नहीं मिल सकता। इसको लौकिक फल तो स्वानुभवसे होता है। कोई बाधक नहीं है अपने आनन्दमें, खुद ही अपने आनन्दमें बाधा डाल लेता है।

यदि परिवारकी अड़चन मालूम करते हो तो जो घरमें चार लोग हैं उनको भी धर्ममार्गमें लगा लिया जाय, फिर आनन्दमें बाधा ही न आयेगी और कदाचित् घरके लोग उल्टे हों तो आप उपेक्षा कर जायें ना? और अपनी धुनमें रहने लगे तो कौनसा कष्ट है? कौनसी परेशानी है?

अपने आपको तो संभाल नहीं सकते और दूसरों पर बात डालते हैं कि इन्होंने मुझे जकड़ लिया है, पकड़ लिया है, दुःखी कर दिया है। अरे कोई जीव किसी दूसरे जीवको दुःखी नहीं कर सकता। खुद ही की कल्पनासे यह खुद दुःखी हो जाता है। ऐसा वस्तुका स्वरूप जानकर बाह्यपदार्थोंका विकल्प छोड़ो, उन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। यदि उदय अच्छा है तो बाह्यपदार्थ आपके पास आवेंगे और यदि उदय अच्छा नहीं है तो संभाली हुई चीजें भी चली जावेंगी। उन बाह्यपदार्थोंकी क्या चिंता करते हो ? ऐसा शुद्ध यदि ज्ञान है तो वह ही मुझे उपादेय है।

कोई जीव केवल अपने शुद्धस्वभावमें दृष्टि करे तो वह सम्यग्दृष्टि होता है। वह सम्यग्दृष्टि पुरुष किस भेदभावनाको करता है जिस भेदभावनाके प्रसादसे मिथ्यात्व गल गया है, गल जाता है, उस भावनाका इन दोहोंमें वर्णन है।

अप्पा गोरउ किण्हुणवि अप्पा रत्तु ण होइ।
अप्पा सुहुमुवि थूलु णवि णाणिउ जाणे जोइ ॥८६॥

आत्मा न गोरा होता है, न काला होता है, न लाल होता है, न सूक्ष्म होता है और न स्थूल होता है। ऐसा ज्ञानी जीव अपने ज्ञानके द्वारा मान रहा है। आत्मा सफेद नहीं है, आत्मा तो अमूर्त है। उसमें रूपका कोई सवाल ही नहीं है, और न यह काला है। गोरा, काला ये रूपकी जातियां हैं और ये केवल पुद्गल द्रव्योंमें होती हैं। यह जीव अपनी जैसी दृष्टि बनाता है वहां ही उसे अच्छा भला नजर आता है। कोई पुरुष बड़े दुःखमें दुःखी हो तो उसे सर्वत्र दुःख ही दुःख नजर आता है। कोई हँस भी रहा हो तो वह यों जानेगा कि यह जबरदस्ती हँस रहा है। गान तान बाजे ये सब राग आवाज भी उसे भद्दे मालूम होते हैं। उनमें कोई रस नहीं जंचता है और जो जीव सुखमें होता है उसे सर्वत्र सुख ही सुख नजर आता है। हालांकि सभी जीव प्रायः दुःखी हैं पर जो सुखमें मस्त है उसे सर्वत्र सुख ही सुख नजर आता है। इसका कारण क्या है कि खुदके परिणमनसे ही यह जीव अपना ही अनुभव करता है। बाहरी पदार्थोंसे यह अनुभवता नहीं है। खुद तो है सुखी सो उसे सुख ही सुख सब जगह नजर आयगा।

सावनके अंधेको सब जगह हरा-हरा दीखता है। एक कहावत ऐसी कहते हैं। सावनमें सब जगह हरियाली छा रही थी। हरियालीके बीचमें कोई पुरुष अंधा हो जाय तो उस अंधेको वही दृश्य जीवन भर नजर आयेगा। जो सुखरूप परिणमता है उसे सर्वत्र सुख नजर आता है। और जो दुःखरूप परिणमता है उसे सर्वत्र दुःख ही नजर आता है। जिसकी

दृष्टि ज्ञान और वैराग्यसे ओतप्रोत है उसे सर्वत्र ही सारे दृश्य असार नजर आते हैं। जिस रूपको देखकर कामी पुरुष अपना सर्वस्व न्यौछावर, समर्पण कर देता है, वह रूप वह आकार सब कुछ ज्ञानी पुरुषको विडम्बनारूप दिखता है। कहां तो शुद्ध ज्ञानस्वरूपी आत्मप्रभु और कहां लिपट गया यह मांसका लोथड़ा? कामीपुरुष, रागीपुरुषको यह चामरंग इष्ट नजर आता है तो ज्ञानीकी दृष्टिमें इस चामके भीतर जो कुछ अशुद्ध है, हड्डियों के ढांचेका जो आकार है वह नजर आता है।

अज्ञानी जीव मानता है कि मैं गोरा हूं, मैं काला हूं। जैसा भी शरीर मिला उस ही शरीरमें इसका प्रेम हो जाता है। अभी किसी वृद्ध पुरुषसे कहकर तो देख लो कि तुम्हारा शरीर तो अब बिल्कुल शिथिल हो गया है, हड्डियां निकल आयी हैं, आंखें धस गई हैं, हिम्मत नहीं रही है। बच्चे यदि अंधेरे में तुम्हें देख लेवें तो भूत समझकर डरकर भाग जावेंगे। ऐसी स्थिति हो गई है पर तुम अपने शरीरसे ही बड़ा प्रेम करते हो। देखो यह लड़का कितना चंगा है, हृष्ट पुष्ट है, तुम्हारे शरीरसे हजारगुना अच्छा इसका शरीर है। तुम इससे प्रेम करो ना? तो क्या वह उससे प्रेम कर लेगा? नहीं। जिसको जो पर्याय मिली है चाहे कैसी भी स्थिति हो उसको उसमें ही अनुराग रहता है। यह आत्मा न सफेद है, न काला है। सफेद और काला तो पुद्गलकी परिणति है। शरीरमें जो रंग प्रकट होता है सो इस पुद्गलके नाते ठीक है, मगर इसमें मुख्य कारण रूपनामक नामकर्मका उदय कारण है। देखो तो मनुष्य-मनुष्यमें प्रायः एकसा ढंग देखा जा रहा है। रूपका एक ढंग देखा जा रहा है। क्या किसी मनुष्यका रूप घोड़ा और गधा जैसा भी होगा? चाहे कोई मनुष्य श्याम हो, कृष्ण हो, गौर हो पर मनुष्यकारूप मनुष्य जैसा ही हुआ करता है। ऐसा जो प्रतिनियतरूप पाया जाता है इसका कारण नामकर्मका उदय है।

आत्मा न गौरवर्णका है, और न कृष्णवर्णका है। और वर्णोंकी भी बात देख लो। श्यामवर्णका हो तो क्या, गौरवर्णका हो तो क्या, ऐसा भी तो हो सकता है कि गौरवर्णका शरीर रोगी हो दुर्गन्धित हो और श्यामवर्णका शरीर कम दुर्गन्धित हो। कितनी ही अटपट बातें हो जाती हैं, उनमें से कोई वर्ण रुचिकर हुआ, कोई वर्ण अरुचिकर हुआ, ये सब अज्ञानकी बातें हैं। आत्मा न श्वेत है, न काला है, न लाल है, आत्मा न सूक्ष्म है और न स्थूल है। अज्ञानीके ऐसी भी कल्पना होती है कि मैं दुबला हो गया, मैं मोटा हो गया। आत्मा कहां तो दुबला और कहां मोटा है, वह तो एक ज्ञानप्रकाश है। बड़े शरीरमें विशाल ज्ञानसे और छोटे शरीरमें

सूक्ष्मज्ञान हो ऐसा कुछ नहीं है। उस शरीरका आत्मासे क्या सम्बन्ध है? सूक्ष्म और स्थूलपना पुद्गलद्रव्योंकी व्यञ्जन पर्यायमें है। अनेक परमाणुवों में मिलकर जो परिणमन होता है उसमें अपेक्षाकृत दुबला और मोटापन होता है। यह आत्मा तो केवल ज्ञानमय है। जो ज्ञानी ऐसे अपने आपको जानता है वह ही महान् योगी है।

ये कृष्ण गौर वर्ण व्यवहारसे जीवके साथ सम्बद्ध हैं, लेकिन शुद्ध-आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं, कर्मजनित हैं, हेय हैं। उनको ज्ञानीपुरुष, वीत-राग निजस्वरूपका सम्वेदन करने वाले पुरुष अपनी दृष्टिमें, आत्मतत्त्वमें नहीं लगाते हैं, सम्बद्ध नहीं कराते हैं। मैं अमुक हूं, मैं अमुक हूं। जो मैं मैं करता है वही पिटता है। जो बकरी मैं मैं करती है वह अपना गला कटाती है। जो मैं ना मैं ना करती है वह मैंना सोनेके पिंजड़ेमें पाली जाती है और कोई यथार्थ लक्ष्यसे 'मैं न' इसको अनुभवमें उतार ले तो फिर उसके आनन्द का क्या ठिकाना है? अब आगे और किस-किस प्रकारसे यह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्माको समझता है? इसका वर्णन करते हैं।

अप्पा बंभणु वइसु णवि णवि खत्तिउ णवि सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि णवि णाणिउ मुणइ असेसु ॥८७॥

ज्ञानी ऐसा समझता है कि आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है और न शेष अन्य है। न पुरुष है, न स्त्री है, नपुंसक है, ऐसा ज्ञानीपुरुष मानता है। ऐसी बात पहिले भी आगई है। अज्ञानीकी मान्यतामें, इनकी विधिरूपमें और उसी बातको फिर आचार्यदेव ज्ञानीकी मान्यता इनके प्रतिषेधरूपमें बता रहे हैं या दुहरा तिहरा कर भी कह रहे हैं तो इसमें कोई दोष नहीं समझना, क्योंकि आचार्यदेव शायद दूसरी बार या तीसरी बार कह रहे हैं। आप तो हजारों बार वही दालरोटी खाते हैं, आचार्य देवने तो दो तीन ही बार कहा। जो चीज रुचिकर है उसे तुम तो रोज-रोज खाते हो यह तो आचार्यदेव अध्यात्मकी बात दुबारा या तिबारा ही कह रहे हैं। इससे नहीं अघाना, वही चीज चल रही है। फिर नई बात और है कि उस बातको पहिले समझ लिया था लेकिन बीचमें रागद्वेष हो जानेसे, उपयोगके अन्यत्र लग जाने से वे सब बातें भूल गये। तो भूले हुए पुरुषको वही बात कहें तो नई बात है। इसलिए अध्यात्मके कथनको कितने ही प्रकार कहा जाय तो कुछ दोष नहीं है और यह ज्ञान बहुत-बहुत कष्ट उठाकर भी किसी क्षण अनुभवमें आ जाय तो आत्माका कल्याण है।

भैया! धन, कन, कंचन राजसुख ये कुछ भी शरण नहीं होंगे। 'धन, समाज, गज, वाजि, राज तो काज न आवे। ज्ञान आपका रूप भये फिर

अचल रहावै।" ये कोई काम नहीं आवेंगे। काम आना तो दूर रहा ये सब क्लेश देनेके लिए हैं। रंकसे लेकर राजा तक, उनको कहां सुख है? सुखी केवल वह है जो सर्व परवस्तुवोंसे त्याग कर चुका है, अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें रमना चाहता है। देखो इस आत्मतत्त्व को। यह आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है और न शूद्र है। वह तो एक चैतन्यसत् है। इस पर्यायभेदके कारण जिसने पर्यायकी प्रधानता रखी है वह मोक्षमार्गकी कला को नहीं जान सकता। जिसने अपने आत्मतत्त्वका परिचय नहीं पाया है उसपर इन बातोंका असर नहीं हो सकता। जगत्में देखो सैकड़ों आए और चले गये। सब अपनी-अपनी करामात दिखाते चले गए। कौन रहा है? रामके समय, कृष्णके समय, वीरके समय, ऋषभ देवके समय कैसा समारोह छाया हुआ होगा, पर ऐसे महापुरुष भी नहीं रह सके तो फिर और अपन सबकी तो बात ही क्या है? ये सब व्यवहार की बातें हैं, यह आत्माका सारभूत तत्त्व नहीं है।

ज्ञानीके उपयोगमें ज्ञानस्वरूप आत्मा है। वह क्या करता है? समस्त वस्तुस्वरूपको जानता भर रहता है। जानना तो आत्माका स्वभाव है, वह जायगा कहां? और जानेगा भी यह अपने आपके परिणमनको। ज्ञानी अपने आपके शुद्धस्वरूप का निश्चय कर चुका, इस कारण वह ज्ञानी सर्व-वस्तुसमूहको जानता है। यह व्यवहारसे भेद लगा है कि मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं, मैं वैश्य हूं, मैं शूद्र हूं। निश्चयसे उस आत्माका क्या स्वरूप है इस पर दृष्टि देने पर यह भेद नजर आता है। इस भेदकी तो बात छोड़ो। गोरा, काला, मोटा, दुबला यह भी भेद नहीं नजर आता है। उस शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि हो। सर्वपदार्थोंसे भिन्न और अपने आपमें अभिन्न ऐसे आत्मतत्त्वको जो नहीं देखता है उसके निरन्तर कर्मबंध चलता है। यह हेयभूत है। विषयकषाय रागद्वेष, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये शुद्ध निश्चयसे हेयभूत हैं। अर्थात् इनकी दृष्टिसे आत्मामें लाभ नहीं है। यह बहिरात्मा अपने सहज वीतराग निर्विकल्प समाधिसे च्युत होता हुआ इन सब वर्णादिकको, रागादिकको अपने आपमें लगाता है किन्तु अन्तरात्मा इन सब दृश्यमान पदार्थोंसे विलक्षण आत्माका शुद्धस्वरूप जो अन्तरात्मत्व है उस अपने स्वरूपको स्वयं शुद्ध आत्माका स्वरूप जानता है।

अब आगे और भी बतलाते हैं कि यह ज्ञानी जीव अपने आपको किस-किस रूप नहीं मानता है?

अप्पा वंदउ खवणु णवि अप्पा गुरउ ण होइ।
अप्पा लिंगिउ एक्कु णवि णाणिउ जाणइ जोइ ॥८८॥

यह आत्मा वंदक नहीं है, मायने बौद्ध नहीं है। क्षपण नहीं है याने दिगम्बर नहीं है, गुरव नहीं है याने श्वेताम्बर नहीं है। यह साधुओंका जो भेद है कि जैन साधु, बौद्धसाधु, अमुक साधु यह भेद आत्मामें नहीं पड़ा। आत्मा तो एक अमूर्त चैतन्यमात्र तत्त्व है, परिणतिका भेद तो अवश्य है, किन्तु यह आत्मा स्वयं भेदवाला नहीं है। आत्मा न बौद्ध है, न क्षपणक है अर्थात् न दिगम्बर है और न और और जितने चाहे ले लो। श्वेताम्बर हैं, दण्डधारी हैं, दण्ड लेने वाले हंस हैं, परमहंस हैं, संन्यासी हैं, जटा रखाने वाले योगी हैं, हड्डीकी माला पहिनने वाले हैं, बड़ी-बड़ी जटावोंकी माला पहिनने वाले हैं, कोई तिलक लगाये हैं, कोई कमरमें मोटा रस्सा लपेटे हैं, कोई भभूत लगाये है, अनेक प्रकारके साधुजन होते हैं पर आत्माका यह विभिन्न स्वरूप नहीं है। जिसने आत्माके स्वरूपका ज्ञान किया है वह आत्माकी उपलब्धिके लिए बाहरी पदार्थोंको हटाने-हटानेका तो काम करेगा मगर लगानेका काम न करेगा। आत्माको क्या चाहिए? समताभाव, निर्विकल्प आनन्द। वह परको हटानेसे मिलेगा। पर, परको लगानेसे न मिलेगा। आत्महितके लिये कुछ भी चीजें शरीरपर रखनेकी आवश्यकता है क्या? जिसे आत्मसाधना करनी है, भष्म हो, माला हो, जटा हो, कुछ भी हो, ये सब परपदार्थ हैं। इनके संचय और संग्रहसे आत्मामें क्या कोई भलाई है? नहीं। वे सब विकल्प हैं।

जैसे खेलमें जिस लड़केका बड़ा चित्त रहता है उसको इतनी भी फुरसत नहीं है कि घर जानेर रोटी तो खा आए, खेलनेमें ही लगा रहता है। मां उसको लिवाने आती है, अरे रोटी तो खा ले। हाथ पकड़कर ले जाती है, खिलाती है। उसने थोड़ासा खा लिया, मुँह धो लिया और फिर खेलने चल दिया। क्योंकि उसके खेलनेकी ही धुन सवार है। इसी तरह जिस महापुरुषमें ज्ञानकी धुन है उस पुरुषमें इतनी फुरसत कहां है कि वह दूसरी चीजें लगाता फिरे, ढूढ़ता फिरे। उसे तो खाने पीने की भी फुरसत नहीं है। ऊनोदर वही रहता है जिसको काम काजका अधिक महत्त्व लगा है। जिसको काम काज अधिक नहीं लगा है, वह आसन मारकर खूब भरपेट खायेगा और जो कामकाजमें अधिक लगा है उसको खानेकी फुरसत ही नहीं है। उसके लिए खाने तकका भी अवकाश नहीं है। साधु पुरुष ऐसे ही होते हैंकि वे काममें लगे हुए होते हैं। उनका काम है ज्ञान ध्यान। उसकी

ही धुनमें लगे हुए होते हैं कि उनको बाहरी बातोंके लिए अवकाश ही नहीं है। तो साधुवोंका डंडा, पट्टी, भस्म आदि यह स्वरूप नहीं है। अगर अपना स्वरूप बनाया जाता है तो उसे ठलुवापनका उद्यम समझना चाहिए। कोई साधु विचित्र ढंगकी ऊँची टोपी लगाकर बैठा है, कोई समस्त कपड़े विचित्र रंगोंसे रंगे हुए बैठा है तो यह ठलुवापन नहीं है तो और है क्या? जिस गृहस्थका जितना अधिक रोजगार चलता है उसको उस रोजगारमें उतना ही चित्त देना पड़ता है। उसको फालतू कार्य करनेकी फुरसत ही कहां है? और जिसके पास कोई कार्य नहीं है और चित्त लगा है इधर उधर तो उसे तो फालतू कार्य ही सूझते हैं।

इस साधुका चित्त लगा है अनाहारस्वभावी शुद्ध ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वमें। इस कारण यह ज्ञानी संत अपने आपमें मग्न रहता है। वह इन भेषोंके बनाने में नहीं फिरता। त्याग करते-करते जो भेष बन गया सोई भेष साधुका होता है। जो लोग भेष बनाते हैं वह साधुता नहीं है। तुम्हें चीजें चाहिए लगानेको या ज्ञानका अनुभव चाहिए। केवल ज्ञानमें ही दृष्टि लगावो। जहां जो होता हो, हो, पर तुम तो एक ज्ञान ध्यानकी धुनमें चलो। आत्मा ऐसे अनेक भेषोंका धारी नहीं होता है। तो फिर कैसा होता है यह आत्मा? यह आत्मा ज्ञानमय होता है। उस ज्ञानमय आत्माको कौन जानता है? उस ज्ञानमय आत्माको ज्ञानी ध्यानी जानता है। जैसे बताया जाता है कि जिस स्त्रीके बालक नहीं हुआ, वह स्त्री बालक होनेकी पीड़ाको क्या जान सकती है? वह दूसरी स्त्रीकी पीड़ाको क्या समझ सकती है। और भी कहावत कहते है कि 'जिसके पैर न फटी बंवाई। वह क्या जाने पीर पराई ॥'

जिस पर जो बात नहीं गुजरी उस सम्बंधमें वह क्या अनुभव करे? जिसके आज तक सिर दर्द नहीं हुआ उसके सामने तुम सिरदर्दसे तड़फ रहे हो तो उसका वह कुछ अर्थ नहीं समझ सकता। उसे क्या मालूम कि सिरका दर्द कैसा होता है? इसी प्रकार जिसको आत्मस्वभावका अनुभव नहीं हुआ है वह आत्मानुभवके रसको क्या जानता है? आत्मानुभव हम आप सब करते हैं पर उसमें शर्त क्या है कि सत्यका तो आग्रह करो और असत्यका असहयोग करो। दो ही तो चीजें होती हैं, सत्यका आग्रह करें और परपदार्थोंका असहयोग करें तो आत्माकी प्राप्ति हो सकती है। आत्मानुभवकी प्राप्ति करनेके उद्यममें यह सब भेदविज्ञानका वर्णन चल रहा है। अब इसीमें थोड़ासा कल आगे होगा।

जो पुरुष वैराग्य धारण करें और उनकी स्थिति किसी भी प्रकार

की हो जाय सो उनकी आत्मा यद्यपि व्यवहारनयसे बौद्ध जैन साधु आदि कहलाती है तो भी शुद्धनिश्चयनयसे देखा जाय तो आत्माके एक भी लिङ्ग नहीं है। कोई भी लिङ्ग नहीं है। ये भेष, ये असमानजातीय पर्यायें आत्मामें नहीं हुआ करती हैं। जैसे वास्तविक साधुजन सम्यक् साधुव्रतों का पालन करते हुए अपनेको साधु नहीं मानते हैं किन्तु अपने को एक चैतन्यस्वरूप मानते हैं और इस ही भीतरी शक्ति श्रद्धाके कारण और आलम्बन के कारण उन साधुवों की कर्मनिर्जरा हो जाती है। इसी प्रकार श्रावक ज्ञानी पुरुष भी गृहस्थीके बीच रहता हुआ; दुकान, कारखाना आदि अनेको आरम्भों के बीच बसता हुआ गृहस्थ अपने को गृहस्थ नहीं मानता है। यह ज्ञानी गृहस्थकी बात कही जा रही है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ घरके बीच रहता हुआ भी अपनेको गृहस्थ नहीं समझता। गृहस्थ क्या समझे अपने को, वह तो अपनेको मनुष्य भी नहीं समझता। यह बात व्यवहारमें मोटे रूपमें सुनकर कोई यह शंका कर सकते हैं कि क्या वे अपनेको मनुष्य भी नहीं समझते हैं ? हां, ज्ञानी पुरुष अपनेको मनुष्य भी नहीं समझते हैं। तब फिर क्या समझते हैं ? चैतन्यलक्षणवान् शुद्ध पदार्थ समझते हैं।

भैया ! यह मनुष्यपर्याय बन गई, पर मैं मनुष्य नहीं हूं। उदयवश, उपाधिवश यह मनुष्य ढांचा बन गया पर यह मैं नहीं हूं। मैं तो आकाशवत् अमूर्त, निर्लेप, ज्ञानघन, आनन्दस्वरूप चैतन्यमहाप्रभु हूं—ऐसी श्रद्धा इस श्रमणके रहती है। गृहस्थीके बीच, किल-किलके बीच भी ज्ञानी गृहस्थ अपने को गृहस्थ नहीं मानते। तब फिर मैं अमुक चन्द हूं, मैं अमुक लाल हूं, मैं अमुक प्रसाद हूं, मैं अमुक पोजीशनका हूं यह तो उनकी श्रद्धामें है ही नहीं, इस कारण वह निराकुल रहता है। जिसने समझा कि यह मैं हूं, बस वही पिट गया। जिसने प्रतीति कर लिया कि यह मेरा है, वह पिट चुका।

भैया ! कोई किसीसे कुछ काम कराने के लिए रूठ जाता है तो यह उसका अविवेक है। यदि किसीसे काम लेना है, जुटाना है तो नाराज होने का उपाय मत करो, किन्तु प्रशंसा करके, आज्ञा मानकर बढ़ावा देने लगो बस वह तो बुरी तरहसे दास बनकर आपकी सेवा करेगा। जैसे कहावतमें कहते हैं कि 'गुड़ खाये मरे तो विष क्यों देवे ?' तो जब यह पुरुष विनयके और प्रेमके वचनोंसे तुष्ट होकर तुम्हारे काम आ सकता है तो क्रोध करके या गाली गलौजका उसके साथ बर्ताव क्यों करो ? यह तो है नीतिकी बात। अपनेको क्या सोचना चाहिए कि कोई आज्ञाकारी भी हो, विनयशील भी हो उसमें रम न जावो, अपने विवेकका संतुलन ठीक-ठीक रखो। ज्ञानीसंत पुरुष अपनेको साधु नहीं समझता है और न गृहस्थ समझता है। तो फिर

तीसरी चीज क्या है ? कुछ नहीं है। मत रहने दो। अटकी क्या है ? मैं तो एक स्वतंत्र चैतन्यस्वभावमय शुद्ध पदार्थ हूं—ऐसी जो श्रद्धा रखता है वह ज्ञानी घरके बीचमें फंसा हुआ भी कर्मोंकी निर्जरा करता है।

एक राजा बोला, मंत्रीसे सभामें कि मंत्री मुझे स्वप्न आया कि अपन दोनों घूमने जा रहे थे। रास्तेमें दो गड्ढे मिले। एकमें गोबर मल भरा था और एकमें शक्कर भरी थी सो हम तो गिर गए शक्कर वाले गड्ढे में और तुम गिर गए गोबर, मलके गड्ढेमें। तो मंत्री बोला, महाराज मुझे भी ऐसा ही स्वप्न आया पर एक बात और अधिक देखी। वह क्या अधिक देखी ? देखा कि आप तो शक्करके गड्ढे में पड़े हुए हैं और मैं गोबर, मलके गड्ढे में पड़ा हूं, पर मैं आपको चाट रहा था और आप मुझे चाट रहे थे। सो राजाको क्या चटाया ? मल व गोबर और स्वयं क्या चाटा ? शक्कर। सो ज्ञानी विवेकी कदाचित् कीचड़में पड़ा है किन्तु स्वाद ले रहा है शक्करका। क्योंकि वह ज्ञानी है। सो किसी भी परिस्थितिमें से गुजरो, लेकिन स्वाद आना चाहिए ज्ञानभावका ही, ज्ञानका ही मधुस्वाद सदा आना चाहिए। गृहस्थ पुरुष के साथ कितनी ही झंझटें लगी हैं, अभी आप अकेले बैठे हैं, हमें तो नहीं दिखता कि आपके ऊपर झंझटे हैं। झंझटे आपकी पीठपर नहीं धरी हैं, आपके सिर पर नहीं हैं। यदि आप कहेंगे कि हमारे भीतरमें तो बड़े-बड़े संकट छा रहे हैं तो वे संकट कल्पनासे बना लिये गये हैं। उस कल्पनाको छोड़ दो तो उन संकटोंके मिटनेमें क्या देर है ? कहोगे कैसे छोड़ दें ? अभी घर छूट जाय तो यह जो धन कमाया है वह छोड़ना पड़ेगा। अरे यह सब एक दिन तो छोड़ना ही पड़ेगा।

भैया ! यदि खुशी-खुशी इस अपने जीवनमें न परसंग छोड़ सके तो संकट न मिटेंगे और यदि खुशी-खुशी इस जीवनमें ही सब कुछ छोड़ दिया तो देखो संकट टलते हैं नहीं ? अच्छा जाने दो, न छोड़ो, जिन्दगी भर घर में रहो, पर श्रद्धा तो सर्वत्र सही बनाए रहो, सबसे अपनेको न्यारा समझो। सबका अस्तित्व जुदा है। किसीसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसे ज्ञानी पुरुष की पहिचान क्या है ? उस ज्ञानी पुरुषका तन, मन, धन, और वचन जो कुछ भी है यह अपने घरके लोगों पर ही नहीं खर्च करता है, वह ५०-१०० जीवोंपर खर्च कर डालता है, यह हैं विरक्त ज्ञानी पुरुषकी पहिचान। ये दिखने वाले हजारों आदमी हैं वे तुम्हारे घरके जीवोंके बराबर भी नहीं हैं क्या ? सारा वैभव, सारा सर्वस्व घरके उन चार जीवों पर ही खर्च हो रहा है और उन हजारों लाखों जीवोंपर कोई दृष्टि ही नहीं है। ज्ञानीकी यह पहिचान है कि एक दृष्टि ही सब जीवोंपर भी डालता है। ये हैं,

मेरे समान हैं, जैसे मेरे घरके चार जीव हैं वैसे ही सब हैं, सब मुझसे भिन्न हैं, जसा स्वरूप हमारे घरके लोगोंका है वैसा ही स्वरूप सब जीवों का है, कुछ तो दृष्टि जाय। यह ज्ञानी गृहस्थकी बात है।

भैया! जो बन सके सो करो, भीतरमें सही विश्वास तो बनाए रहो कि हमारा जीवन कोई न पार कर देगा। भगवान् भी हमारा जीवन पार करने न आयेगा। गुरु भी कोई ऐसा नहीं है कि हाथ पकड़ कर जीवन पार कर देगा। परके द्वारा परके पारकी जाने वाली बात ही नहीं है। कोई किसीके जीवन को पार न कर देगा। यह तो स्वयंके परिणामों पर निर्भर है। बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। कितनी बड़ी जिम्मेदारी है? जितनी कि घर के १० लोगों की पोजीशन बढ़ाने की जिम्मेदारी समझते हैं उससे भी कई गुणा जिम्मेदारी है। इस मनुष्यभवको पाकर हम अपने आपका अनुभव करें प्रत्येक स्थितिमें कि मैं तो सबसे निराला ज्ञानमात्र एक पदार्थ हूं। इस आत्मावगाहनके होने पर संकट स्वयं टल जावेंगे।

किसी मनुष्यके ऊपर शहदकी मक्खी मंडरा गई। अब इस वेदनासे वह तालाबमें घुस गया। जब वह तालाबमें घुस गया तो मक्खियां क्या करें? तालाब के भीतर घुसकर वे कैसे काट सकें? वह पानीमें ही नीचे-नीचे २५-३० हाथ तक निकल गया, ऊपर आया कि आध मिनटमें ही मक्खियां आ गईं। फिर तकलीफ हो और फिर जरासा डूब जायगा तो फिर सारी तकलीफ मिट जायेगी। हैं ५०० मक्खी मगर डूबने पर कोई मक्खी काट नहीं सकती। सो बड़ी आपत्ति आ रही है, बड़े संकट आ रहे हैं, अच्छा कुछ क्षणको अपने ज्ञानरसमें डूब जावो, शुद्ध जाननस्वरूपकी चेतना में मग्न हो जावो। मैं तो सबसे न्यारा एक चैतन्य पदार्थ हूं, मेरा कहीं कुछ नहीं है। यदि दो मिनटको भी आराम पा लें तो उससे आत्माका बल फिर बढ़ जायगा और फिर उन संकटोंसे मुकाबला कर लोगे।

भैया! हम अपने आपको जितना विरक्त और अपने ही एकत्व-स्वरूपमें रत अपने आपका विचार करेंगे उतना ही मोक्षमार्ग सिद्ध है। इस दोहे में यह भावार्थ कहा गया है कि ये द्रव्य लिङ्ग जो हैं जैसे मुनि हो गए, साधु हो गए, संन्यासी हो गए, ये सब देहके आश्रित हैं। आत्माके आश्रित तो आत्माका परिणाम है। अच्छा करें, बुरा करें सो परिणाम भी आत्माके आश्रित हैं। जो ये सब द्रव्य लिङ्ग साधु भेष संन्यासी बना, यह देहके आधीन है। यह जीवका स्वरूप नहीं है। किन्तु इसे ही कोई जीव का स्वरूप कहने लगे तो वह उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे कहा जायगा। जसे कोई ईंट पत्थरके महलको अपना मकान कहने लगे तो

बतलावो उसकी बात सत्य है क्या ? क्या आपका मकान है ? नहीं। अरे आप तो आकाशवत् एक अमूर्त पदार्थ हैं आपके मकान कहां ?

एक सेठ ने बहुत बड़ी हवेली बनवाई। लोगों को आमंत्रण देकर बुलवाया और सभामें बोला, देखो भाइयों ! यह हवेली बनी है, कोई इसमें गल्ती हो तो बतलावो, अभी ठीक करवा देंगे। लोगोंने कहा कि इसमें तो गल्ती नहीं है। वहां कोई जैन बैठा था बोला कि इसमें दो गल्तियां नजर आती हैं। सेठने कहा, सुनो इन्जीनियर ! ये क्या गल्ती बतला रहे हैं ? अच्छा बतलावो। कहा, इस हवेलीमें एक तो गल्ती यह नजर आ रही है कि यह हवेली सदा नहीं रहेगी। भला बतलावो तो सही कि इस गल्ती को कौन ठीक कर सकते हैं ? आजकल तो लिफाफा जैसे और दुबले मकान बनते हैं। यह कभी गिर न सकें यह कैसे बात बने ? अच्छा भाई यह तो बड़ी कठिन गल्ती निकाली। दूसरी गल्ती बतलावो। बोला, इसमें दूसरी गल्ती यह नजर आ रही है कि इसको बनवाने वाला भी सदा नहीं रहेगा। इन दोनों गल्तियों को मेटो, कैसे मेटोगे ? गल्ती क्या है ? कुछ नहीं। पर द्रव्य हैं, उनका परिणमन है। गल्ती तो यह कर रहे हैं कि यह मेरी है ऐसा मानते हैं। इसी प्रकार ये जो शरीरके भेष बन जाते हैं, कौन बन गया ? मुनि हो गए, क्षुल्लक हो गए, त्यागी हो गए, कोई हो गए, यह तो समझना ही चाहिए कि परमार्थतः यह मैं नहीं हूं। मैं तो एक चैतन्यसत् हूं।

जब मैं रेलसे सफर करता था तो साथमें दो बूढ़े ब्रह्मचारी भी चलते थे। वे दोनों ही करीब एकसे ही थे। एक जो गुजर गए उनके पाससे कोई निकल जाय, किसीका कोट छू जाय, किसी का जूता छू जाय तो झट नाराज हो जाते थे। तू देखता नहीं है कि यहां कौन बैठा है ? कोई बिस्तर पर बैठ गया या सीट पर किसीका जूता आ गया तो बहुत नाराज हो जाते थे – देखता नहीं कि यहां ब्रह्मचारी बैठे हैं। हम उन्हें समझाते थे कि भाई गुस्सा क्यों करते हो ? यह तो मुसाफिरी है। ब्रह्मचारियोंको वैसे ही क्रोध न करना चाहिए। तो वह बोलते कि अरे तो क्या हुआ ? देखते नहीं कि यहां ब्रह्मचारी बैठे हैं। हमने कहा कि यह नहीं जानते हैं कि ये ब्रह्मचारी बैठे हैं। और जानते भी हों तो भी क्रोध नहीं करना चाहिए।

सो यह जो गुस्सा आता है वह भी पर्याय बुद्धिसे आता है। यह चला गया, नमस्कार भी नहीं किया। यों नहीं किया, यों नहीं किया। तो है क्या ? सर्वत्र पर्यायबुद्धिका नाच। जो पुरुष श्रद्धामें अपनेको यह मानता है कि मैं साधु हूं, मैं आचार्य हूं, मैं मुनि हूं—इसकी तो बात जाने दो, वह

सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। काम सब हो, साधुपनका ठीक है। दीक्षा भी हो, नियम भी करे, व्रत भी करे पर वह खुद अपने आपमें यह श्रद्धा करता है कि मैं मुनि हूं तो उसने अपने ज्ञानानन्दस्वभावी निजप्रभुका घात किया। अपने आपका यह श्रद्धान हो कि मैं शरीर तकसे भी न्यारा हूं। जो मैंने क्रोध कर दिया वह अनन्तानुबंधी क्रोध है। उस क्रोधको करके मैंने अपने स्वरूपपर आघात कर दिया। पर्यायके गर्वमें आकर अपने प्रभुस्वरूपमें तुच्छ जो बना दिया वह है अनन्तानुबंधी मान और यहां वहांकी बातोंमें भिड़कर धन वैभव लोग रिश्तेदार इज्जत इनमें रमकर जो प्रभुके साथ कपट करता है वह है अनन्तानुबंधी माया। प्रभुकी रुचि न करके जड़ वैभव में जो प्रीति उत्पन्न होती है तो वह है अनन्तानुबंध लोभ। जैसा उत्सुक होकर दुकानके कार्योंमें लगता है वैसा ही उत्सुक होकर प्रभुभक्ति करनेके लिए, ज्ञानकी बातें सुननेके लिए, अध्ययन करनेके लिए, सत्संगके लिए, गुरुसेवाके लिए होड़ लगाए मनमें तीव्र अनुराग जगे तो समझो कि हम कुछ अपने लिए कुछ करते जा रहे हैं।

यह ज्ञानीसंत चाहे श्रावक हो, चाहे साधु हो, अपनेमें यह श्रद्धा करता है कि मैं चैतन्यस्वरूप सत् हूं। मैं मनुष्य नहीं, मैं पुरुष नहीं, मैं स्त्री नहीं, मैं किसी नामका नहीं हूं, मैं किसी कुलका नहीं हूं, मैं किसी परिवार संग वाला नहीं हूं। मैं तो सर्वत्र अकेला हूं। क्या आपका पुत्र जिन्दगीभर आपकी सेवा करेगा ? नहीं। अगर आप थोड़ासा भले होंगे उनके लिए तो वे थोड़ा पूछ लेंगे और आप अगर गल्ती करेंगे उनकी विनयमें तो वे लड़के उस पिताकी जरा भी पूछ न करेंगे।

भैया ! एक किम्वदन्ती है कि ब्रह्माने चार जीव बनाए मनुष्य, गधा, कुत्ता और उल्लू। सबको दे दिया ४०-४० वर्षकी उम्र और उनसे कहा जावो तुमको मैंने पैदा किया। पहिले उल्लूसे कहा कि जावो तुम्हें मैंने पैदा किया। बोला महाराज काम क्या? बोले अंधे बने बैठे रहना और कुछ मिल जाय तो खा लेना। महाराज उम्र कितनी ४० वर्ष। महाराज उम्र तो बहुत है, कुछ कम कर दो। अच्छा २० वर्ष कम कर दिए। २० वर्ष की उम्र तिजोरीमें रख ली। कुत्ते से कहा जावो पैदा किया। महाराज काम, जो रोटी दे उसकी विनय करना। उमर क्या होगी, ४० वर्ष। महाराज बहुत कम कर दीजिये अच्छा जावो २० वर्ष कम कर दिया। २० वर्ष रख लिए। गधासे कहा जावो पैदा किया, महाराज काम क्या ? खूब बोझा ढोना और सूखा रूखा खाना। महाराज उम्र ? कहा, ४० वर्ष। महाराज उम्र कम करदो। अच्छा २० वर्ष कम कर दिया। अब मनुष्यको ब्रह्माने कहा, जावो पैदा किया। महाराज

काम क्या होगा ? खूब खेलना क्रीड़ा करना, लीला करना, शादी करना, खूब भोग करना, राज्य करना। महाराज उम्र क्या होगी ? ४० वर्ष। महाराज ४० वर्षमें क्या होगा ? उम्र तो कम है। कहा अच्छा ठहरो मैं देखता हूं, अगर स्टाकमें उमर निकलेगी तो तुम्हें दे दूंगा। तिजोरी में खोल कर देखा तो बोले, हां हां उम्र मिल गई। ६० वर्ष और निकले। अब तो मनुष्यको १०० वर्षकी उम्र मिल गई। आ गया मनुष्य। असलियतकी उम्र तो ४० वर्षकी थी। जो स्वतः दिए हुए ४० वर्ष थे उनमें तो मनुष्य को खूब मजा रहा। और ४० वर्षके बादमें ६० वर्षका समय आया। उसमेंसे प्रथम बीस वर्षकी उमर चूँकि गधेकी बची हुई थी सो इस उम्रमें गधेकी तरह चिंताएँ लादे हुए घूम रहा है। लड़की बड़ी हो गई। उसकी शादी करना है। यह करना है, वह करना है, इस प्रकारकी अनेक चिंताएँ बनी रहती हैं। अब उमर बीती, ६० वर्ष हो गए जरा, शिथिल हो गए। घरमें बच्चे ऐसे होते ही हैं कि कोई बच्चा ज्यादा पूछ करता है और कोई बच्चा कम पूछ करता है। सो जिसने पूछा खिलाया उसकी ही हां में हां मिलाता रहता है। फिर ६० और ८० के बीचकी उम्र रहती है। अंधे हो गए। किसी ने सेवा कर दिया तो उसे आशीश दे दिया। किसीने पूछ न की तो उसको गाली सुना दिया और करेगा क्या ? इससे यह शिक्षा लो कि जब तक शक्ति है, बल है, तब तक ज्ञानमें प्रवृत्ति है। इसलिए धर्ममें प्रवृत्ति करो।

भैया ! कहीं कुछ ऐसा नियम नहीं है कि बड़ी उमर हो जाय तो वह कल्याण नहीं कर सकता। यह तो कथा है, परन्तु "बालपनेमें ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी सुख लह्यो। अर्धमृतकसम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनो।" इसका अर्थ यह नहीं है कि बूढ़ा हो जानेपर ज्ञान नहीं रहता है। बड़े-बड़े साधु संत सारी जिन्दगी भर व्रत तप करते रहते हैं। वे बूढ़े बन गए तो क्या आत्मस्वरूपमें नहीं लग पाते होंगे ? अवश्य लग पाते हैं। तो इस का यह अर्थ लगावो कि जिस जीवने बचपनमें ज्ञान नहीं पाया, वह ही जीव तरुण समयमें स्त्रीमें लीन रहा। तो वही जीव जब बूढ़ा होता है तब उसको आत्माका भान कैसे होगा ? अगर वही बचपन में, जवानी में आत्मज्ञान में रुचि करे तो उसका ज्ञान बढ़ेगा, घटेगा नहीं। जब तक शक्ति है, बल है तब तक खूब ज्ञानार्जन करो, सत्संग करो, गुरुसेवा करो, विद्या सीखो, भक्ति कर लो, जितना बन सके धर्मका काम करलो। गफलतके कार्योंमें न लगो, वहां धर्म नहीं है, सिद्धि नहीं है। भीतरमें श्रद्धान् ज्ञान चारित्र है तब तो जीवन सफल है और अगर श्रद्धान् ज्ञान बिगड़ गया तो धन वैभवसे तो पूरा न

पड़ेगा। तो ये साधुवोंके भेष यह जीवका स्वरूप नहीं है। किन्तु वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप जो भावलिङ्ग रूप परिणाम है वह जीवका स्वरूप होगा ना ? इस आत्माका निर्विकल्प समतारूप परिणाम भी सूक्ष्म शुद्ध-निश्चयनयसे जीवका स्वरूप नहीं है किन्तु शुद्ध आत्माके स्वरूपका साधक होने से यह निर्मल परिणाम, समताका परिणाम, वीतरागताका भाव जीव का स्वरूप कहा है। स्वरूप तो अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यशक्ति है। उसकी रुचि करो कि यह मैं हूं। तो इस रुचिके बलसे इस संसारसे पार हो सकते हो।

इस जीवके साथ अधिक सम्बन्ध है शरीर, मन और वचनका। इन तीनोंको यह जीव अपना मानता है और इनका अपने आपको कर्ता मानता है। इस देह मन और वाणीका यह जीव न करने वाला है और न करवाने वाला है, न करने वाले का अनुमोदन करने वाला है। यह परद्रव्य है, इस परद्रव्य में आत्माका कुछ सम्बन्ध है, इसलिए करनेकी बात तो है ही नहीं, पर थोड़ा यह ख्याल हो सकता है कि हम किसी परके कर्ता तो नहीं हैं पर कराते तो हैं। कराने में तो सम्बन्ध नहीं चाहिये। कराना तो इनडाइरेक्ट होता है। कहते हैं कि न तुम देहादिक करने वाले हो और न कराने वाले हो क्योंकि कराने वाला वह कहलाता है जो कार्य का प्रयोजक है। इस कार्य का प्रयोजन जिसे मिले, उसे कराने वाला कहते हैं।

आप मालीसे बगीचा सिंचवाते हैं तो आप कराने वाले क्यों कह-लाये ? यों कि उस सींचने के कामके फलका आपने उपभोग किया इसलिए आप कराने वाले कहलाये। वस्तुतः आप वहां भी कराने वाले नहीं हैं। जगत्के किसी भी अन्य पदार्थका ऐसा कौनसा प्रयोजन है जो प्रयोजन आपको मिले। घड़ी है तो घड़ीके परिणमन का प्रयोजन घड़ी को मिला। इस घड़ी के जो परिणमन हुआ उसका फल किसको मिला ? घड़ीको। वह फल क्या है ? घड़ीका अस्तित्व बना रहा। आप बहुतसी बातें बोला करते हैं, मैंने मुनीमसे हिसाब कराया, मैं बच्चेसे अमुक काम करवाता हूं। तो उस बच्चे ने जो कार्य किया इसका फल किसको मिला ? बच्चे का, क्योंकि वह रो रहा है, मचल रहा है तो फल उसको ही मिला। मुनीमने जो कार्य किया उसका फल किसको मिला ? मुनीमको। मुनीमने श्रम किया, मुनीमके परिणमन चला। जब हमें कोई फल नहीं मिलता तो मैं करवाने वाला कौन हूं ? और करने वालेकी अनुमोदना करवाने वाला भी कैसे हूं ? कोई सांप मर गया तो पड़ौसके आदमी जल्दी जुड़ जाते हैं और कहते हैं कि इस सांप को मारा ? यह तो बहुत लम्बा सांप है। किसीने बताया दुर्गासिंहने मारा।

वाह रे ! दुर्गासिंह बड़ा काम किया। उन कहने वालोंके परिणाममें हिंसा रुचि गई तो अपने आपके परिणामकी रुचि हुई, दूसरेकी नहीं। निश्चयसे खुद-खुद का कर्ता है, कारयिता है व अनुमोदता है। मोह जैसा पाप नहीं है। अपनेको महान् मान रहे, सर्वसम्पन्न मान रहे। अरे दुःखमय संसारमें जीवकी काहे की सम्पन्नता। एक पद्य है। आपको याद है कि "जो ही छिन कटे, सो ही आयुमें अवश्य घटे, बूंद बूंद बीते जैसे अंजुलिको जल है। देह नित क्षीण होत, नैन तेजहीन होत, जोबन मलीन होत, क्षीण होत बल है॥ आवे जरा नेडी तके अन्तक अहेडी आवे, परभव नजीक जाय नरभव निफल है। मेल को मिलापी जन पूछत कुशल मेरी ऐसी अब दशामें मित्र काहेकी कुशल है॥"

किसीने पूछा कहो मित्र कुशलता है ? तो उत्तर मिलता है कि काहे की कुशलता है ? जो क्षण गुजर रहा है वह तो गुजर ही रहा है जैसे कि हाथ की अँगुलीमें पानी है तो बूंद बूंद गिर कर व्यतीत हो जाता है। आप बच्चेकी निशल्यताको देख करके सोचें कि हम भी इतने ही छोटे हो जायें। हमने जो ज्ञान पाया सो ज्ञान तो यहीं रहे और आयु हो जाय ८ वर्ष की सो अब कुछ नहीं हो सकता। जितनी आयु और रह गई है वह अंजुलिके जलकी भांति टपक टपक कर समाप्त हो जायगी। यह घड़ी टिक टिक कर रही है जो यह आवाज निकल गई वह फिर कभी नहीं आवेगी। यह घड़ी टिक टिक करती हुई सबको जता रही है कि जो समय यह निकल गया वह अब कभी नहीं आयगा। शरीर प्रतिदिन क्षीण हो रहा है। नेत्र तेजहीन हो रहे हैं, इनसे दिखना कम हो गया है मित्र ! काहे की कुशलता है ? जवानी मलीन हो रही है। मलीनका अर्थ है कि विकारभावसे जिन्दगी गंदी हो रही है, बल घट रहा है और बुढ़ापा अपने पास आ रहा है। जैसे शिकारी अपने शिकारको तकता है इस तरह यह बुढ़ापा तक रहा है कि मैं कब आऊँ ? यह सब इतना दुर्लभ मनुष्यजीवन निष्फल जा रहा है। मोह करता है। तू तो एकदम खूब इकट्ठा करले, क्यों डरता है खूब कर। मोह कितना करोगे ? पूरा मोह करके निष्कर्षकी सोच लेना। यह आयु निष्फल जा रही है। ऐसी तो स्थिति है, कुशलता पूछ रहे हो भैया ! संसारमें कुशलताका नाम नहीं। इससे उपयोग हट कर आनन्दघन ज्ञानमय निजतत्त्वकी दृष्टि करे वहां सर्वकुशलता है।

देह, मन और वचन ये पुद्गल द्रव्यात्मक कहे गए हैं और ये पुद्गल द्रव्यात्मक भी अनंतपरमाणु द्रव्यों के पिंड हैं। यह शरीर जड़ पुद्गलोंका पिंड है। यह हाड़ चाम सब बिखर जायेगा, देह कोई ठोस चीज नहीं है,

और फिर मल का बीज है अर्थात् मलको पैदा करने वाला है। खब नहाये साबुन से, तेल डाला गर्मीके दिनों में फिर पसीना आ गया, फिर ज्यों के त्यों हो गए और एक जगहसे क्या, स्थान स्थानसे मल बहता है, आंखसे कीचड़ निकली, नाकसे नाक निकली, रोम रोमसे पसीना निकल रहा, ऐसा सर्वत्र अपवित्र शरीर है और उससे मूढ़ने दृढ़परिचय बना लिया है। यह मोही जीव अपने देहको ऐसा मानता है कि मैं ही तो हूं और जो मैं चैतन्य स्वरूपसत् हूं और उसकी ओर दृष्टि नहीं। उसकी ओर दृष्टि चली जाय तो फिर इतना क्लेश नहीं रहे। अपने इस निराले परिपूर्ण कृतकृत्य निजप्रभुका परिचय नहीं है सो सैकड़ों कल्पनायें उठती हैं। यह मन जो देहके अन्दर अष्टदल कमलाकार रचनायुक्त है, वह भी पुद्गल पिंड है और ये वचन जो ओठोंके तालुओं के सम्बन्धसे निकला करते हैं, ये वचन भी पौद्गलिक हैं। वैज्ञानिक लोगोंने संगीतवादन बहुत प्रकार से निकला, हारमोनियम, रेडियो आदिसे और एक बाजा और बना है उसमें कई आवाजें निकाल लो वह बिजलीसे चलता है। यदि जैसा कोमल जीव है और उसके कागला है कण्ठ है होठ हैं और जिस तरहसे बोलता है यदि उस तरहसे ओंठ आदि वैज्ञानिक लोग यदि बना सकते तो ठीक, जैसे मनुष्य शब्द बोलता है ऐसे शब्द निकाल सकते, यह कठिन है। तो यह पुद्गल द्रव्योंके मेल मिलाप से होने वाले शब्द हैं। यदि ऐसी ही रचना बन सकती तो ऐसे ही वचन निकल जाते। यह वचन पौद्गलिक है, किन्तु पुद्गलका जो स्वरूप है वह रस, गंध, स्पर्शका पिंड है। वह अस्तित्व इसमें पाया जाता है। किसलिए गर्व करता है देहका ? यह तो प्रकट है असार है। जितना सुन्दर शरीर मिला इतना ही विविध का कारण है। देखो देखो कि और ममता बढ़ायें बहुत अच्छा। वे अपने मुख, नाक जो कि चिपटी हैं उनको आइनेमें देखकर फिर संतोष हो सकता है। किस पर गर्व करता है ? यह देह तो किसी दिन मरघट में फिर जायेगा। एक दो मित्र थे। तो एक मित्र बोला, देखो मित्र हम तुम्हारा सदा सन्मान रखेंगे। सत्कार किया करेंगे और करते थे। मगर यार मरने के वक्त यह होगा यार तो पैदल चलेगा।

किससे प्रेम किया जाता है ? शरीर से, मर जायेगा जो कुछ नहीं कर सकता और न रहेगा और कभी कभी दिखावटी मुहब्बतसे यह कहने लगते हैं कि अरे नहीं ले जाओ हमारे ललाको। तो पंचजन कहने लगे कि अच्छा नहीं ले जायेंगे तो स्वयं कहेगी कि नहीं ले जाओ। ये सब दिखावटी बातें हैं, मुहब्बत है। सारा यह झंझट, परस्परका व्यवहार, ये सब कुछ झूठा है यहां तो यह हालत है।

एक दफे ऊँटों का विवाह हुआ तो विवाह में गाने बजानेके लिए ऊँटों ने गधोंको बुलाया तो गधे उन ऊँटोंके शरीरको देखकर कहें कि वाह रे! ऊँट कितना सुन्दर रूप है ? मगर गधे यही अपने मुंहसे गायें तो ऊँट कहते हैं कि कितना सुन्दर राग है ? तो यही हालत इस दुनियां की है। तो उस प्रकारका जो पुद्गल द्रव्य है वह अनेक परमाणु द्रव्योंका पुद्गल है। यद्यपि यह सब अनेक परमाणुद्रव्यों का निजस्वरूप है। तन्मय अनंत परमाणु द्रव्य ये एक संकल्प है। इसमें अनेक द्रव्य बस रहे हैं मगर कथंचित् रूपसे हम कर रहे हैं। अब जो कुछ देख रहे हैं इसकी यदि सची खबर पड़ जाय तो यह सब बह जायेगा, ढल जायेगा। आप सोचते होंगे कि सची खबर मिले तो यह कैसे बह जायेगा ? यह नहीं बिखरा। मगर सची खबर जानने वालेके ज्ञानमें यह सब कुछ रहेगा, बिखर जायेगा अथवा क्या है कि अनेक परमाणुओंका समूह है। ये एक-एक परमाणु एक-एक भिन्न भिन्न स्वरूप रख रहा है, एक का दूसरे से सम्बन्ध नहीं है। इसमें एक-एक परमाणु की दृष्टि चली जायेगी। यह इन्द्रिय द्वारा नहीं होगा, इसलिए खुल कर इसका सच्चा पता नहीं पड़ेगा। ज्ञाननेत्रों से ये सब बिखर जायेगा कि दृष्टिमें यह मायारूप शरीर नहीं रहेगा। यह तुम्हारे वचन, काय चूंकि परद्रव्य हैं तो इनका जो स्वरूप है वह इन्हीं में है। इनका स्वरूप आत्मामें कभी नहीं आ सकता। अभी तेल और पानीको मिला दिया जाय तो वे तक नहीं मिलते हैं परस्परमें। एक दूसरेका स्वरूप स्वीकार नहीं करता। एक जातिमें होते हुए भी फिर भी यह देह और आत्मा ये तो भिन्न जाति के हैं, यह कैसे एक दूसरे का स्वरूप स्वीकार करलें तो परद्रव्यत्वका अभाव है और परद्रव्यके कर्तृत्वका अभाव है। इन दोनों बातों को सिद्ध करते हैं।

मैं पुद्गलमय नहीं हूं और न मेरे द्वारा वे सब पुद्गल पिंड किए गए हैं। इसलिए न तो मैं देह हूं और न मैं देहका कर्ता हूं। इस प्रकरणमें निर्धारित पुद्गलात्मक जो यह शरीर है इस शरीरकी बात कह रहे हैं। अच्छा भाई शरीर मैं नहीं हूं तो मन और वचन तो मैं हूं। तो मन और वचन इस शरीरमें मिश्रित हैं। ये परद्रव्य हैं, यह मैं नहीं हूं। मेरा पुद्गलात्मकका तो अत्यंत विरोध है, पुद्गलात्मकका मुझमें अत्यंत अभाव है तो यह बात विशेष समझमें आ रही होगी। इन सभी पुरुषों को कुछ भी खबर है तो यह बात समझमें नहीं आयेगी। आपके ही अंतरंग उद्यमसे समझमें आयेगी।

आपने यदि अपनी अच्छी तैयारी की है तो एक बच्चा भी आपसे बोलता तो आप सब समझ जायेंगे और तैयारी नहीं है तो कुछ समझमें

नहीं आयेगा। यह आपके स्वरूपस्याचरणका प्रताप है अन्य कोई तो निमित्त मात्र है। यह मैं ज्ञान घन आदिमय आत्माके प्रताप शरीरत्व का विरोधका कर्ता नहीं हूं। शरीरका किसी भी प्रकार कर्ता नहीं, किसी भी ढंगसे गुंजाइश नहीं है। अरे मैं इस शरीरका कारण हूं इसलिए कर्ता तो हूं। मैं नहीं होता तो यह शरीर किसको जानता। यह शरीर किसीका कर्ता नहीं है। निश्चयसे देखो क्या मैं शरीरके परिणमन का कारण हूं? क्या मेरी करतूत, मेरा प्रताप, मेरे निज आत्मप्रदेशको छोड़कर कहीं अन्यत्र भी हो सकता है? देखो तो सही, नहीं हो सकता। यह परिणमन वाला उपादेयभूत द्रव्य परसे निमित्तमात्र पाकर स्वयं अपनी कलासे तदनुरूप परिणमता रहता है। यही जैसे पूछ सकता है कि आपकी जो व्याख्या हो रही है इसके तो हम लोग कारण हैं। नहीं मानो तो सोचो ऐसा कि हम श्रोताओंका प्रताप है जो आप बोल रहे हैं तो हम श्रोता लोग आपके इस वर्णन करने के कारण तो हो गए न। अच्छा आप लोग उपादान कारण तो हैं नहीं, मेरे बोलनेके लिए उपादान कारण तो नहीं है ना क्योंकि इसलिए भिन्न हैं। आपके प्रदेश से बाहर मेरे में कुछ नहीं आ रहा है, पर निमित्तकारण तो हम हैं। तो हम अपनी ओरसे कुछ बात टाल नहीं रहे, पैदा नहीं कर रहे। जो जैसे भावको लिए हुए बैठा है तो बैठा रहे। हम ही अपनी कल्पनासे भाई सब बड़े सज्जन पुरुष हैं, धर्म कार्य जानने वाले हैं, इनका बड़ा धर्म वात्सल्य है। इतनी बात जब मेरे हृदय में बैठी, जब अपनी चेष्टामें, अपने आपमें यह श्रम कर रहा है, इस तरह आप मिलेगें कि हम तुम्हारे करने के कारण सही, पर हम लोग जो समझ रहे हैं उसके कारण तो हम वक्ता हैं सो हम वक्ता लोग आप लोगों की समझके उपादानकारण हैं कि निमित्तकारण? नहीं, उपादान तो नहीं है। तो कहेगा कि निमित्तकारण हैं तो हम निमित्त कारण भले ही हैं पर मेरेसे कुछ उद्यम नहीं हो रहा। आप स्वयं अपनी सामर्थ्यसे कलासे आप अपनेको अपने गुणोंका विकास कर रहे हैं तो इस प्रकार मैं शरीरका कारण क्या हूं। मैं अपने द्वारा ठसकसे नहीं कह सकता कि मैं कारण हूं, दुनियां हूं। तो मैं इस शरीर का कारण नहीं हूं, जिससे कुछ गुंजाइश निकल सकती कि लो मैं शरीरका कर्ता तो हूं जैसे शरीरका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मैं कुछ कर सकने वाला नहीं हूं। जैसे किसी समयमें राज्यमें एक कानून बना था कि कोई भी मनुष्य अपने पेड़ोंको काट नहीं सकता। महुआ, आम और कोई भी हो और उन्हें काटे तो इजाजत लेनी होगी और इजाजत लेने पर काट सकता था वे परस्पर कहने लगे कि हमारी तो चीज है पर अब हमारी नहीं हो रही, वह तो बहुत दूरकी चीज है

आपका एकक्षेत्रावगाहसे सम्बन्ध है। इतने तक का तो निमित्तनैमित्तक का सम्बन्ध है। आपमें क्रोधका परिणाम जगेगा तो आपका लाल लाल चेहरा हो जायगा इतना तो निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है जिस पर कि इस शरीर पर आपका अधिकार नहीं।

अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि णवि सामिउ णवि भिच्चु।
सूरउ कायरु होइ णवि णवि उत्तमु णवि णिच्चु ॥८६॥

सम्यग्दृष्टि जीव किस प्रकार की भावना को करता है उसका यह सब वर्णन चल रहा है। उस वर्णनमें यह चौथी गाथा है। सम्यग्दृष्टि अपने आप को यों जानता है कि यह मैं आत्मा न गुरु हूं, न शिष्य हूं। पहिले तो यह बात है कि गुरुपना और शिष्यपना यह एक पर्याय है और कल्पना की चीज है। अर्थात् जो समझानेमें निमित्त पड़े उसे हम गुरु कहते हैं और ऐसे उस गुरुके उपदेशके वचनके निमित्तसे जो प्राणी अपनी समझ बनाता है उसे शिष्य कहते हैं। सो गुरुपना और शिष्यपना एक पर्याय है। आत्मा कोई एक पर्यायमात्र नहीं है। फिर दूसरी बात यह है कि परमार्थसे न कोई किसी को समझा सकता है और न कोई किसीसे समझ सकता है। किसी भी आत्मामें पुरुषमें ऐसी योग्यता नहीं है कि वह अपनी परिणति दूसरे को दे दे या दूसरे की परिणतिको कर दे। और न किसीमें ऐसी योग्यता है कि दूसरेकी परिणतिको ग्रहण करले या दूसरेकी परिणतिसे अपना काम बना ले। प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र हैं। पूज्यपाद स्वामीने कहा है कि "यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये। उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥"

मैं दूसरेके द्वारा समझ रहा हूं, मैं दूसरों को समझा रहा हूं, ऐसी जो चेष्टा है बुद्धि है वह पागलोंकी चेष्टा है क्योंकि मैं आत्मतत्व तो निर्विकल्प हूं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं; वह न किसीको समझाता है और न किसीसे समझता है। फिर भी देखा तो जाता है कि किसी बड़े विद्वान्के निमित्तसे समझा जाता है और दूसरोंको समझानेका विषय बनाकर कोई किसीको गुरु बोलते हैं। सो इस निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके कारण व्यवहारसे गुरु शिष्यका व्यवहार है। पर परमार्थसे न कोई आत्मा गुरु है और न कोई आत्मा शिष्य है। यह आत्मा अपनेमें ही तो कल्याणकी बाधा करता है। अपनेमें ही इष्ट और अनिष्टका ज्ञान करता है और अपने आपमें ही अपने आपको हितमें लगाया करता है। इस कारणसे यह आत्मा स्वयं ही अपने आप गुरु है। इसीको इष्टोपदेशमें भी बताया है कि "स्वयं सदभिलाषित्वा-दभीष्टज्ञापकत्वतः। स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥"

इस प्रकार गुरु और शिष्यका व्यवहार एक व्यवहार है, उपचार है।

पर परमार्थसे कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुषको न तो समझा सकता है और न किसी दूसरे पुरुषसे समझ सकता है। इसी प्रकार न यह आत्मा मालिक है और न यह आत्मा नौकर है। प्रत्येक प्राणी अपना-अपना परिणाम लिए हुए हैं। अपने विषयकषायकी वृत्ति है। जैसी भी जिसकी योग्यता है वैसा परिणाम लिए है और अपने अपने परिणामके अनुसार वह परिणमता चला जाता है। इसमें क्या यह छांट करना कि मैं स्वामी हूं, यह दास है, अथवा मैं दास हूं, यह स्वामी है। सब जीव अपनी-अपनी योग्यतासे अपना काम करते चले जा रहे हैं। फिर यह सहज आत्मतत्त्व एक चैतन्यशक्तिमात्र है। यहां कौन किसका मालिक हुआ ? किसे मालिक करार किया जाय ? बल्कि जिसे हम मालिक कहते हैं वह बीसोंका दास है तब उसका नाम मालिक है। घरमें जो मुख्य पुरुष है, जिस पर सारी जिम्मेदारी है, वह घरके बीसों आदमियोंका दास है तब मालिक है।

एक बड़ा कारखाना चल रहा है, उस कारखानेमें १०० नौकर काम करते हैं। तो एक दृष्टिसे यह देखते हैं कि मालिक इसमें एक है और ये १०० नौकर हैं किन्तु एक दृष्टिसे यह भी देखते हैं कि उन १०० का पेट पालने के लिए यह एक नौकर है। दृष्टि बदलकर देखनेकी बात है। कौन किसका मालिक है ? कौन किसका नौकर है ? ये तो आजीविका और व्यवहारकी पद्धतियां हैं। और व्यवहार दृष्टिमें भी कोई समझता हो कि अमुकसे कोई काम करा लेता हूं तो यह सोचना गलत है। मैं नौकरसे अपना काम कराता हूं यह सोचना भ्रम है। आप किसीसे काम नहीं कराते हैं। आपका काम है जानना, इच्छा करना और अपने आत्माके प्रदेश परिस्पंद कर लेना। इन तीनोंको छोड़कर आपका कोई काम नहीं है। सर्वत्र बाह्यवृत्तियोंमें आप जानते हैं या कोई इच्छा कर डालते हैं व अपने प्रदेशोंमें प्रदेशोंका का हलन चलन कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त आपका कोई काम नहीं है। बाहरमें किसी कामको यदि यह मान लेता है कि मैं यह काम करता हूं तो मैं यह काम करता हूं, इस प्रकारके अभिप्रायमात्र को वह करता है, कामको नहीं करता।

जैसे एक सुनार सोना चांदी पीटकर कोई गहना गढ़ता है तो यह बतलावो कि क्या सुनार बनाता है ? यदि आपको चांदी न दीखे, कोई ऐसी औषधि लगी हो कि आपको चांदी न दीखे तो आपको वह हाथ चलाता हुआ, पसीना बहाता हुआ, हांफता हुआ वह पुरुष नजर आयगा। उस स्थितिमें आप यह देख रहे होंगे कि यह सुनार केवल अपना परिश्रम कर रहा है। गहनेको नहीं बना रहा है। और कभी वह सुनार कोई अंजन

गुटिका दबाये हुए या कोई ऐसी औषधि लगाए हुए काम कर रहा हो तो आपको सुनार न दीखेगा, पलटती; लेटती बिखरती चांदीकी डली ही दीखेगी। स्पष्ट नजर आ रहा होगा कि यह चांदी की डली इस प्रकारका परिणमन कर रही है। इसको करने वाला कोई नहीं है। और ज्ञानदृष्टिसे आत्माको भी देखते जावो कुछ हानि नहीं है। मगर सुनारकी चेष्टा सुनारमें ही हो रही है, गहनेमें नहीं हो रही है। सुनार अपने श्रमको ही करता है, किसी अन्यको नहीं करता है तो इसी प्रकार जिसे हम कहते हैं मालिक तो वह मालिक केवल अपने श्रमको करता है, वह दासका कुछ नहीं करता। जिसे हम कहते हैं दास वह केवल अपना काम करता है मालिकका काम नहीं करता है।

भैया ! सर्वत्र देख लो कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका काम नहीं कर सकता। जब यह स्थिति है तो आप किसे तो मालिक कहेंगे और किसे दास कहेंगे ? यह कल्पनाकी बात है। मान लिया कि मैं स्वामी हूं, पर स्वामी बन नहीं गए। किसीने मान लिया कि मैं दास हूं, भृत्य हूं पर वह आत्मा दास नहीं हो गया। यह तो एक परिणतिकी अपेक्षा बात कही है। अब जरा आत्माके स्वभावकी दृष्टि करके देखो। यह मैं खालिस आत्मा, केवल आत्मा अर्थात् मात्रमें ही होऊँ, मेरे साथ दूसरा कोई नहीं लगा हुआ है, ऐसी स्थितिमें यह मैं किस प्रकारका हूं ? इस पर दृष्टि डालो। यह तो अभी शरीर लगा है। मन वचन कायकी चेष्टा करते हुएमें अपनी कुछ बात बताना यह तो संयोगदृष्टिकी बात है। केवल, खालिस, प्योर अपनेको देखो कि मैं कैसा हूं ? मैं शुद्धज्ञानस्वरूप हूं। इसमें कर्मोंका लगाव नहीं है। शरीरका इसमें लगाव नहीं है। फिर रागादिकका भी लगाव नहीं है। यह तो अपने सत्त्वके कारण अपने स्वरूपकी वजहसे स्वयं ही एक चित्स्वरूप है। इसमें न स्वामीका भेद है और न दासका भेद है। स्वामीका भी कौन भृत्य होता है और भृत्यका भी कौन स्वामी होता है ? आज यह स्वामी है और मरणके बाद कहो ऐसी पर्याय पाये कि उस भृत्यका भी दास बनना पड़े। तो अगले भवमें यह दास हो गया। अगले भवकी बात छोड़ो, इस ही भवमें दास हो सकता है।

कोई पुरानी घटना है कि एक अंग्रेज था। तो उसने बहुत बार लाट्री डाली। १० रुपयेकी लाट्री डालो तो २ लाख देते हैं, १ लाख देते हैं। ऐसा एक तमाशा बना हुआ था। इस तरहसे वह बहुतसे रुपये खो चुका पर उसको मिला कुछ नहीं। एक दिन ऐसी धुन बन गई कि जो यहांका

चपरासी है उसके नाम लाट्री डाल दें। सो चपरासीके नामसे १० रुपये डाल दिए। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि उसके नाम लाट्री निकल आई २ लाख रुपयेकी। अब वह अंग्रेज सोचता है कि इस तुच्छ विचार वाले को यदि दो लाख रुपये दिए देते हैं तो यह तो देखते ही हर्षके मारे अपने प्राण गँवा देगा। तो उस अंग्रेजने उस चपरासीको बुलाया और उसके कुछ बेंत लगाए, उसे दुःखी किया, पीड़ित किया और दुःखकी स्थितिमें बताया कि तेरे नाम २ लाख रुपयेकी लाट्री आई है। उसको देने लगा। वह चपरासी कहता है मालिक मैं इस रुपये को क्या करूँगा? मैं इसकी व्यवस्था करना, धरना जानता नहीं। तो आप ही इन्हें संभालिए, सो उसने २ लाख रुपयेकी कोई कम्पनी खोली, उस कम्पनीमें ही वह काम करने लगा। अब बतलावो स्वामी कौन है? वह चपरासी मालिक है या वह स्वामी मालिक है? अरे वह स्वामी तो हो गया दास और वह चपरासी हो गया मालिक।

भैया! यहां तो किसी माने हुए कामको मिल-जुल कर करने की बात है। किसी कामको मालिक कर सकता है, किसी कामको दास कर सकता है। पर किसी उद्देश्यके लिए दोनोंका सहयोग आवश्यक है सो मिल कर अपना काम करते हैं। तो वास्तवमें यह आत्मा न स्वामी है और न भृत्य है। इसी प्रकार यह आत्मा न शूर है और न कायर है। आत्माके स्वभावमें यह काल्पनिक बल नहीं है। दो मनका बोझ उठा लिया तो उसे लोग क्या कहेंगे? बलवान कहेंगे। और अगर ३ मनका बोझ उठा लिया तो उसे लोग क्या कहेंगे? बलवान। और अगर १० मनका बोझ उठा लिया तो उसे लोग क्या मानेंगे? बलवान। तो यह मनुष्य बेचारा बीस सेरका भी बोझ नहीं ले जा सकता है और भैंसा कई मनका बोझ ढोता है। तो उससे बलवान हो गया भैंसा। बलवान होना, श्रेष्ठ होना, उत्तम होना एक ही बात है। तो स्वभावमें शरीरका बल नहीं है। शरीरका बल तो आत्मबल का विकार है। वह शरीरबलके रूपमें फूट निकला है।

इसी प्रकार आत्मा कायर भी नहीं है। कायरता, डरपोकपना, भयभीतता ये सब विकार हैं। ये आत्माके स्वभाव नहीं हैं। आत्मा तो शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है। यह न वीर है, न कायर है। इसी प्रकार यह आत्मा न उत्तम है और न नीच है। आत्माके स्वभावको देखो। पर्यायको निरख निरख कर तो अब तक हम संकटोंसे सुलझ नहीं पाये। जगत् के जीवोंको पर्यायदृष्टिसे निरखा कि ये अमुकचन्द हैं, ये अमुकप्रसाद हैं, ये अमुकदास हैं, ये ऐसे हैं, मैं ऐसा हूं, ऐसा निरखनेसे तो वह बूटी नहीं पाई जा सकती, वह कला नहीं पा सकते, जिस कलाके प्रसादसे कर्मनिर्जरा होती है। सम्य-

ज्ञानका बड़ा महत्व है। ये सब ऐसे समागम मिले हैं जिन्हें कह सकते हैं कि इनसे मूंड़ मार रहे हैं, सिर पीट रहे हैं, उनमें ही चिपट रहे हैं, इनके फलमें कुछ मिलेगा नहीं। अंतमें यह असहाय अकेलाका ही अकेला रहेगा। और विकल्प पाप भावोंको करके कर्मबन्ध और किया, और अन्त में यह अकेला ही चला जायगा। जिसको दिखाने के लिए अपनी धन कमाने की कला खेली, और और प्रकारकी कलाएँ खेली वे एक भी साथी न होंगे। वे इस जीवनमें ही साथी न होंगे। मरकर तो साथी होंगे ही क्या?

भैया! विवेक यह है कि दुनियांको देखकर बह न जाना। अपने हितका साधन बनाना। मुझे नहीं जरूरत है कि १० आदमी कहें कि यह लखपति है। हां भगवान् आकर कह दे मुझे कि तुम लखपति हो तो मैं अपने को धन्य मानता हूं। पर पापी मोही मलिन संसारचक्रमें भ्रमण करने वाले लोगोंके मुखसे मैं ऐसा लखपति हूं, अमुक हूं, इतनी बात सुनकर अपने को धन्य मानना चाहते हो तो समझ लो कि पूरा कुछ न पड़ेगा। रास्ता चलते-चलते यदि कहीं यह ख्याल आ गया कि मालूम होता है कि हम रास्ता भूल गए हैं उस समय क्या कर्त्तव्य है कि उसी जगह आप बैठ जाएँ, आगे न बढ़ें, बल्कि कुछ पीछे को मुड़ें। और संशय हो तो उसी जगह बैठ जावो। बाट देखो कोई मुसाफिर मिले तो उससे बात पूछो। यदि आप पूछोगे नहीं और बढ़ते ही चले जावोगे तो परिणाम क्या होगा कि भूल बढ़ती चली जावेगी। पर हम आप सबका हाल यह है कि बन टू आल सभी तो विपत्तियोंमें फंसे हैं। इतना सुन्दर क्षण व्यतीत कर डाला है और अपने आत्मस्वरूपका परिचय नहीं किया है। उस आत्मस्वरूपकी कोई परवाह नहीं करते।

भैया! ऐसी अपनी अन्तःज्ञानकला तो पा लो कि इन २४ घंटोंमें दो मिनट तो अपने सहज शुद्ध ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी दृष्टि करलें। एक आध मिनट भी अपना यह काम कर सके तो बाकी २३ घंटे और ५६ मिनट का जो उपयोग बिगड़ता है उस पर भी काबू पा लिया जाता है। अनन्त कालसे कर्म बनते चले आए हैं और एक सेकेन्डके खोटे परिणाममें ही कहो ७० कोड़ाकोड़ी सागरका मोहिनीय कर्म बंध जाय, कितना लम्बा काल होता है जिसका बयान नहीं किया जा सकता है। एक सेकेन्डके दुर्भाव की गलतीमें ७० कोड़ाकोड़ी सागर कर्म बन गए हैं। कितना होता है ७० कोड़ा-कोड़ी सागरका समय? इसकी जानकारीमें मूलसे चलिए। कल्पना करलो कि २ हजार कोसका लम्बा चौड़ा गड्ढा है (कल्पनासे ही जाना जा सकता है, कोई गिन नहीं सकता है) इसे कल्पनामें बता रहे हैं। कल्पना

करो, इतने बड़े गड्ढे में बालों के छोटे-छोटे टुकड़े जिनका दूसरा हिस्सा न हो सके, उस गड्ढेमें ठूंसकर खूब भर दो और फिर बादमें उस पर हाथी चला दो (यह समझाया जा रहा है कि इतना लम्बा काल होता है) और जो बाल उस गड्ढे में भरे जायें वे कौन हों ? ७ दिनके जन्मे हुए मेंढ़ के हों। वे भी उत्तम भोगभूमिके जन्म के हों। उस गड्ढेमें वे बिल्कुल बारीक बालके नन्हें नन्हें टुकड़े भर दो। कर्म-भूमि से भोगभूमिजके बाल पतले होते हैं। इसे मनुष्यके माध्यमसे सुनें। कर्मभूमिके मनुष्यके बाल जितने मोटे होते हैं उसका ८ वां हिस्सा पतला पड़ेगा जघन्यभोग भूमिके मनुष्यका बाल। मायने जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके ८ बाल बराबर हमारे आपके बाल हैं। और उसका भी ८ वां हिस्सा पड़ेगा मध्यमभोगभूमिके मनुष्यका और उसका भी ८ वां हिस्सा है उत्तमका और उसमें भी और पतला बाल होगा मेंढ़का। मेंढ़का बाल बहुत बारीक होता है।

तो कल्पना भी ऐसी करो कि जो तनिक सुहाती जाय। विषय रूक्ष है। अब १०० वर्षमें १ बाल निकालो। उस गड्ढेमें जितने बाल पड़े हैं उन सबको निकाल सको जितने समयमें उतने वर्षोंका नाम है व्यवहार पल्य। फिर उसका असंख्यातगुणा समय है उद्धारपल्य। फिर उसका असंख्यात गुणा समय कहलाता है १ अद्धापल्य, ऐसे १० करोड़ अद्धापल्य हो जाएँ तो उसे कहते हैं एक सागर समय। ऐसे एक करोड़ सागरमें एक करोड़ सागर का गुणा किया जाय, वह जितना हो उसे कहते हैं एक कोड़ाकोड़ी सागर। ऐसे ही ७० कोड़ाकोड़ीके सागरकी स्थितिको लिये हुए कर्म बन्ध जाते हैं आधे सेकेण्ड के तीव्र मोहमें। यह तो आधे सेकेण्डकी बात बताई। यहां तो २४ घंटे यही कमाई हो रही है। लाखों कोड़ाकोड़ी सागरोंके कर्म बांधते चले जा रहे हैं। इतना कर्मोंका भार लद गया।

अब घबड़ावो नहीं, देखो—जैसे कूड़ा कागज कपड़ोंका एक २०-२५ फुटका ढेर लग गया है और उसको कहा जाय इसे फेंको, साफ करो तो कितना समय लगेगा ? लगभग १ महीना लगेगा। और चतुर आदमी क्या करेगा कि एक सींक जलाकर छुवा देता है – तीन-चार दिन में ही जलकर सब स्वाहा हो जाता है। ऐसे ही करोड़ों भवोंके बांधे हुए कर्मजाल हम आप पर लदे हैं, उन्हें उठा-उठा कर कैसे फेंके ? इसे धीरे-धीरे कैसे निकालें ? इनके विनाशका तो एक ही उपाय है कि शुद्धज्ञानरूप आगकी कण छुवा दें तो करोड़ों जन्मोंका यह कर्मोंका ढेर क्षणमात्रमें ही भस्म हो जायगा। ऐसी है अपने सत्य ज्ञानकी कला।

भैया ! यह जीव कर्मोदयका निमित्त पाकर कोई लोकमान्य कुल

वाला कहलाने लगेगा तो कोई निन्द्य कुल वाला कहलाने लगेगा। तो इस से हम अपने आत्माकी उत्तम नींचकी व्यवस्था करें। यह तो कर्मविपाकका नाटक है। इस नाटकके अन्दर भी यह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप शाश्वत विराजमान है, उसकी दृष्टि नहीं की जाती है और ईंट पत्थरके पुद्गलोंमें ही सब बस गए हैं। कितना बड़ा संकटोंका भार इस जीव पर लद गया है। यह व्यर्थका भार एक मिनटको भी इससे नहीं हट सकता है। यह आत्मा न उत्तम है और न नीच है। यह तो शुद्ध चैतन्यमात्र है।

अच्छा भैया! एक यही बात बतलावो कि यह आत्मा रागसहित है कि रागरहित है? आत्माको रागसहित तो कह नहीं सकते क्योंकि डर लग रहा है कि कहीं राग चिपट न बैठें? रागसहित तो आप बोल नहीं रहे हैं। राग जीवका स्वरूप नहीं है, स्वभाव नहीं है। ऐसा आत्मा रागसहित नहीं है। मगर आत्मा रागरहित भी नहीं है। अर्थात् रागरहित कह दिया तो इससे क्या बिगड़ गया सो बतलावो? दृष्टिमें आए क्या? रागरहित। आत्मामें राग नहीं है, राग नहीं है आत्मामें। इस कथनमें इसको अपनी दृष्टिमें विधिरूप क्या लिया गया, क्या ग्रहण किया गया? इसलिए आत्मा का स्वरूप न रागरहित है और न रागसहित है किन्तु वह तो चैतन्यस्वरूप है। यह दृष्टि वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करती है। यह भींत है ना सामने बतावो यह भींत काली है या कालेपनसे रहित है? यह भींत कृष्णतासे सहित है या रहित है? पदार्थोंको विधिरूपसे जानो, निषेधरूपसे पदार्थोंको जान नहीं सकते। निगेटिव और पोजिटिव। निषेधसे कुछ ग्रहण न आयगा, विधिसे ग्रहण आयगा। आत्मामें मल नहीं है, तो आत्माको मलरहित देखो। रागसहित और रागरहित देखनेमें तुम्हारे हाथ कुछ आयेगा नहीं किन्तु एक चैतन्यमात्र निरखनेमें, ज्ञानमात्र निरखनेमें आपको एक ज्ञानका अनुभव जगेगा। जहां ऐसे स्वरूपकी बात चलती हो वहां ऊँच नीचकी बात कहें यह तो कोई दमदारीकी बात नहीं है। सो गुरु शिष्य आदिक सम्बन्ध यद्यपि व्यवहारनयसे जीवस्वरूप है तो भी शुद्ध निश्चयसे देखा जाय तो परमात्मद्रव्यसे भिन्न है, हेयभूत है।

यह जीव शुद्ध निश्चयनयसे केवल अपने स्वरूपमात्र हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, किन्तु अपने इस शुद्ध आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे चिगे हुए हैं तो अपनेको नानारूप रागादिरूप अनुभव करते हैं और जिस चाही अवस्थाको अपनेसे सम्बद्ध कर लेते हैं। अज्ञानी जीव अपनेको गुरु माने, शिष्य माने, स्वामी माने, नौकर माने, शूरवीर माने, कायर माने पर सम्यग्दृष्टि जीव अन्तरात्मा, चूँकि उसे अपने शुद्धएकाकी ज्ञान ज्योतिस्वरूप आत्मतत्त्वका

अनुभव हो चुका है, इस कारण वीतराग निर्विकल्प समाधिमें स्थित होते हुए इन सभी बातोंको परस्वरूप जानता है। अब आगे यह बतलाते हैं कि यह मिथ्यादृष्टि जीव अपनेको और किस-किस प्रकार रूपमें मानता है ?

अप्पा माणुसु देउ णवि अप्पा तिरिउ ण होइ।
अप्पा णारउ कहिंपि णवि णाणिउ जाणइ जोइ ॥९०॥

आत्मा न मनुष्य होता है, न देव होता है, न तिर्यञ्च होता है और न नारकी होता है। योगी पुरुष अपने आपको शुद्ध ज्ञानस्वरूप जानकर ऐसा समझता है। यह मनुस्य जैसा जो ढंग देख रहा है यह क्या होवा है ? स्वतंत्रता से निरखो तो इस समस्त पिण्डमें एक तो आत्मा है और अनन्त शरीरवर्गणाके परमाणु हैं और उनसे भी अनन्त गुणा कार्माण वर्गणाके परमाणु हैं। इन सबका जो पिण्ड है उसे कहते हैं मनुष्य। इस जगत्में कैसी प्राकृतिक दृष्टि हो जाती है कि यह ईश्वर अपनेमें इच्छा करता है, विकार करता है, अपने आपको नानारूप अनुभवता है। इस कारण निमित्त-नैमित्तिक भावपूर्वक ऐसा कर्म बंध होता है कि जिसके उदयमें स्वयंमेव ऐसे शरीरकी सृष्टि हो जाती है।

जगत्में जितने पदार्थ हैं वे निरंतर परिणमते रहते हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरेको नहीं परिणमाता। तब यह हो क्या गया कि इस ईश्वरने, आत्माने विकार किया, इच्छाकी, उसका निमित्त पाकर ये शरीरके परमाणु इस प्रकारके बन गए। कोई द्रव्य किसी द्रव्यका बनाता कुछ नहीं है। यहां आप सब बैठे हैं और सबकी छाया पड़ रही है। अब जरा यह बतलावो कि इस छायाको कर कौन रहा है ? बिजली कर रही है क्या ? नहीं। आप कर रहे हैं क्या ? नहीं। आप तो अपने शरीरमें रहते हुए अपने उठने बैठनेका काम कर रहे हैं। फिर इस छायाको कर कौन रहा है ? कोई नहीं कर रहा है। फिर यह छाया कैसे आ गयी ? यही तो तत्त्व है कि कोई दूसरा करता नहीं और परका निमित्त पाकर यह स्वयं हो जाता है। इस छाया में आपका परिश्रम क्या लगा ? आप अपने शरीरके अन्दर हैं अपना परिश्रम करते हुए रह रहे हो और इस दरी पर यह छाया आपका निमित्त पाकर ऐसी सीधमें बिजलीका निमित्त पाकर यह होगई। इस जगत्के इन सब कार्योंमें निमित्तनैमित्तिक विधिसे तो देख सकते हैं पर कोई पदार्थ अपनी परिणति से किसी अन्य पदार्थका कुछ करता हो, ऐसी बात नहीं है।

यह सम्यग्ज्ञानी जीव विचारकर रहा है। मैं मनुष्य नहीं हूं। इस मनुष्य शरीरके रचे जानेमें मैं निमित्त तो हुआ कोई, लेकिन निमित्त होते है जुदे पदार्थ। जैसे घड़ा बनानेमें सकोराके बनानेमें कुम्हार निमित्त है

तो कुम्हार उस सकोरासे जुदा पदार्थ है या सकोरा रूप है ? बतलावो। कुम्हार सकोरारूप नहीं है ? क्या कुम्हारको मिट्टी बना दोगे ? नहीं। कुम्हार बिल्कुल जुदा है। जो निमित्त होता है वह उपादान से अत्यन्त पृथक् सत्ता रखने वाला होता है। यदि एक ही सत्ता रूप हो तो निमित्त नहीं कहा जा सकता है। यह स्वयं उपादान है तो इस शरीरको, इस आत्मा को उपादान बनाकर तो रच नहीं दिया, उपादान होकर शरीरमें रचता तो जैसा शरीर जड़ है तैसा आत्मा भी जड़ हो जाता। तो शरीरके रचे जाने में आत्मा निमित्त है और किसी कार्यमें कोई निमित्त होगा तो वह कार्यसे जुदी सत्ता वाला हुआ करता है। सर्वत्र देख लो। कपड़ेके रचे जानेमें निमित्त है कौन ? जुलाहा। तो जुलाहा उस कपड़ेमें तन्मय है या जुदा है ? कपड़ेसे जुदा है। इसी प्रकार शरीरकी रचनामें यह आत्मा निमित्त है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह आत्मा शरीर नहीं है। सोना चांदीके गहनोंके बनानेमें सुनार निमित्त है तो इसका अर्थ है कि वह गहना ही सुनार नहीं है। इसी प्रकार इस शरीरकी रचनामें आत्मा निमित्त है तो इसका अर्थ यह है कि शरीर आत्मा नहीं है। भैया ! इस मनुष्य शरीरको निरखकर हम ऐसा समझें कि मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं। न मैं मनुष्य हूं, न मैं नारकी हूं, न मैं तिर्यंच हूं, न मैं देव हूं। इन सबसे परे केवल चैतन्यमात्र हूं। आत्माके परिचयके लिए आत्माके विध्यात्मक लिङ्गपर दृष्टि देनी चाहिए। आत्मा रागी नहीं, द्वेषी नहीं, क्रोधी नहीं, कुछ नहीं तो और क्या है ? इस बातके जाने बिना नहीं नहीं की जानकारीसे क्या पूरा पड़ेगा ? एक बार बाई जी ने भागीरथ जी बाबाको कहा कि बाबाजी उड़दकी दाल बना यें ? नहीं। गेहूंकी रोटी ? नहीं। चावल बना लें ? नहीं। घी चाहिए ? नहीं। नमक डाल दें ? नहीं। तो धूल बना दें क्या ? अरे सभीको नहीं, नहीं करते जाते हो तो और बनाएँ क्या ? अरे जो खाना हो सीधा उसका नाम ले लो। कहा ज्वारकी रोटी बनालो। हां तो यों कहो। तो आत्माका स्वरूप किस किस रूपसे जाना ? रागरहित है ? नहीं रागद्वेष रूप नहीं है, इसमें जन्ममरण नहीं है, इसके गति इन्द्रिय नहीं है। इससे जीवका क्या परिचय होगा ? यह तो जीवके स्वरूपका शृङ्गार है। जैसे किसी को खब मौज हो, भरपेट भोजनकी व्यवस्था हो और बड़े साधन हों तो अच्छे कपड़े पहिने, बड़ा शौक रखे, बड़ा आडम्बर रखे, बड़ा शृङ्गार करे, बहुत-बहुत नखरे करे, ठीक है, ये सब बातें पेट भरेपर होती हैं। जीवका मूल लक्षण क्या है ? इसका परिचय तो करलो। पहिले जीवका पेटा भर लो। ऐसा ही तो कहते हैं ना ? अच्छा इन चीजोंसे पहिले पेटा भर लो, मायने उस खानेको लिख लो, पूर्ति

कर लो तो पहिले जीवका पेटा तो भर लो। जीवका क्या स्वरूप है? इस का निर्णय कर लो, फिर उसका शृङ्गार करो।

यह जीव गुणस्थानसे अतीत है, जीवस्थानसे परे है, गतीन्द्रिय आदि से रहित है। इसमें कोई आश्रव नहीं पाये जाते हैं, और जीवका परिचय न हो तो किसके बारेमें यह कहा जा रहा है? उसका कुछ अर्थ भी है क्या? कोई अर्थ नहीं है। जैसे दुल्हाके बिना बरातकी क्या कीमत है? बरात कुछ तथ्य भी रखती है क्या? उस बारातका कुछ अर्थ भी है क्या? कुछ अर्थ नहीं है। इसी प्रकार जीवके स्वलक्षणके परिचय बिना इन बातोंका कुछ अर्थ है क्या? जो नहीं-नहीं किए जा रहे हैं आचार्य देव, आत्मा गुरु नहीं, शिष्य नहीं, स्वामी नहीं, मनुष्य नहीं, देव नहीं, कुछ अर्थ नहीं। इसी कारण इन सब गाथावोंमें, दोहोंमें पहिले जीवका क्या स्वरूप है? इसका वर्णन विशेष आया था। और उसके बाद अब उन उनका निषेध किया जा रहा है जिन-जिनमें अज्ञानीजन मुग्ध होते हैं। जीवपर सबसे बड़ा संकट है तो मोहका है। जो कुछ भी मिला है यह सब मिट जायगा। और जिसमें मोह करते हो वे सब बिछुड़ जायेंगे। पर जो मोह कलंक बसा लिया है वह तो पिण्ड न छोड़ेगा। वह तो अगले भवमें भी जायगा और इस भवमें भी दुखी होगा। यह योगी पुरुष अपनेको चतुर्गतिसे रहितमात्र चिदात्मक देख रहा है। कैसा है यह योगी कि तीन गुप्तिरूप निर्विकल्प समाधिमें स्थित है। मन, वचन और काय, इनकी गुप्ति क्या? मनको न हिलने देना, वचन न बोलना, शरीरको न हिलने देना, वचन न बोलना, शरीरको न हिलने देना। जब त्रिगुप्ति भली प्रकार सिद्ध होती है तो वहां उच्चज्ञान प्रकट होता है। परमावधि ज्ञान हो सर्वावधिज्ञान हो इससे ऊँचा मनःपर्याय ज्ञान हो।

एक बार धर्मके मामले पर पति पत्नीका विवाद हो गया। पत्नी थी जैन साधुकी भक्त और पति था अन्य साधुका भक्त। या श्रेणिक और चेलना की ही कथा हो, नीचे हड्डियां गड़वा दिया और ऊपरसे साफ कर दिया, छोटा सा कोठा बनवा दिया और कहा कि तुम यहां रसोई बनाओ और हम देखें तुम्हारे साधुवों को। यदि उनके विशिष्ट ज्ञान होगा तो न आयेंगे। अब वह सोचती है पत्नी कि साधुकी साधुताका सम्बंध तो अध्यात्मसे है, यह नियम नहीं है कि ऊँचा शुद्ध ज्ञान हो और मनःपर्याय ज्ञानी हो। क्या किया जाय? यों तो कहना नहीं है हड्डी गड़ी हैं, आप न आना, पड़गाहना जरूरी है। उसने युक्ति सोच ली और पड़गाहते समय बोली—हे त्रिगुप्तिधारक महाराज! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ। तो एक मुनिराज आए और सीधे चले गए। उन्हें पता था कि मेरी मनोगुप्ति नहीं है या अन्य

गुप्ति नहीं है। दूसरा साधु आया वह भी न ठहरा, तीसरा साधु आया वह भी न ठहरा। तो पतिने कहा कि ये क्यों नहीं ठहरते ? तो पत्नी ने सब भेद बता दिया कि यहां हाड़ गड़े हैं, और रसोई बनाया है तो ये साधु कैसे आयेंगे ? यदि कोई अवधिज्ञानी भी हो तो अवधिज्ञानी साधु सदा जोड़ा नहीं करता है किन्तु पड़गाहने वाले से जो ऐसा सुनेगा त्रिगुप्तधारी तो वह सोचेगा कि यों क्यों कहा ? तो वह देख लेगा, हड्डी दीख जायगी, वह चला जायगा।

भैया ! सबसे बड़ी साधना है कि मन वशमें रहे, शरीर वशमें रहे। यहां अपन लोगोंके क्या वशमें है सो बतलावो ? मन वशमें हो सो बतलावो। अभी हारमोनियम राग सुननेमें आये तो मन चला जायगा कि एक गाना मैं भी गा दूं। तबलाकी अच्छी ठपाक सुनें तो झट घुंघुरु लाने चल देंगे। अभी कोई चर्चा सुनी कि अमुक चीज अच्छी है, उसका भाव सस्ता हो रहा है तो झट खरीदने चल देंगे। तो मन हमारे वशमें तो नहीं हैं। अगर वशमें हो तो आप जानों। पर यह है कि हम आपके मन, वचन, और शरीर वशमें नहीं हैं। मन, वचन, शरीर यहां से उठते हैं, बाहरमें लगते हैं, तो इतना कर देना चाहिए कि इस मन, वचन, कायको ऐसी जगह पटक दो कि जहां तुम्हें खतरा ही न हो। शुभोपयोगमें लगा दो, जिनेन्द्रदेवकी भक्ति में लगा दो।

जब कभी ६॥ बजे हम चर्याको उठते थे तो ६ बजे तक कभी-कभी रामसहाय जी और अमोलकचन्दजी भगवानकी पूजा गान तानसे करते थे। तो अपना उपयोग यदि शुभोपयोगमें लगादो तो पापोंका बचाव तो हो। जो कर्मठ आत्मा होता है वह ठाली नहीं बैठता है, उसे तो कुछ न कुछ काम चाहिए। आप आत्माको किस काममें लगावेंगे ? बोलो। अरे देव पूजा, दीनोंका उपकार दुःखियोंकी, रोगियोंकी सेवा, कोई शुभोपयोग के काममें लगा दो। शुभोपयोग बहुत बड़ा भारी भार है। इस शुभोपयोगके कारण खोटे मनुष्य बनें, देव बनें, तिर्यञ्च बनें, नारकी बनें, इसमें पैदा होते हैं। किसका भरोसा रखा जाय ? कोई भी तो अपनी परिणतिसे बाहर निकल कर हिलता तक नहीं, कोई मुझे चाहता तक नहीं और आपको भी कोई नहीं चाहता है। आप सोचते होंगे कि चाह तो रहे हैं और कहते जा रहे हैं कि नहीं चाहते। आपकी अपने आपमें जो शुभ भावना होती है, धर्ममें जागृति हो रही है, उस परिणामसे आपकी लगन लगी है सो उसकी पूर्ति इस ही रूपमें होती है कि किसी शुभ कार्यमें लगा जाय। कौन किसे चाहता है ?

जाड़ेके दिनोंमें भिखारी लोग कपड़े मांगने भैया कब निकलते हैं ? ४ बजे सुबह और कसी कंपकपी आवाजसे और अपनी ओर से भी नमक मिर्च मिलाकर कैसी करुण पुकारमें बोलते हैं ? उनकी उस आवाजको सुनकर आप उनको धोती और कम्बल निकालकर दे देते हैं। तो आपने भिखारियोंको चाहा क्या ? या उन पर दयाकी क्या ? उन पर कोई ऐहसान किया क्या ? अरे उन भिखारियोंने ऐसी कला खेली कि आपके हृदयमें एक वेदना पैदा हो गई और उस वेदनाको नहीं सह सके। सो घरसे कपड़े उठाकर उसको देने पड़े, तब आपको चैन मिली, नहीं तो तब तक आप बेचैन थे। आपने अपनी बेचैनी मिटानेके लिए उस दीनको कपड़े दिये हैं, उस दीनके रिश्तेदार बनकर नहीं दिये हैं। इसी प्रकार भगवानको कौन चाहता है ? भगवान् अपने घरमें हैं, अपने प्रदेशमें हैं, सिद्धालयमें हैं। वे अपने ज्ञानानन्दको भोगते हैं, तुम्हारी तरफ तो निगाह भी नहीं करते। वह अपने ज्ञान आनन्द स्वरूपको भोगे या इन ठलुवोंकी ओर दृष्टि डाले ? निगाह तक नहीं करता है। आप एक दो घंटेसे करुण पुकारमें चिल्ला रहे हैं, भगवान् से विनती कर रहे हैं तो ऐसा नहीं है कि वह भगवान् यह सोचे कि अच्छा चलो, यह दो घण्टे से पुकार रहा है, चलो चलें और इसे कुछ सान्त्वना दे दें। भगवान् तो तुम्हारा कुछ नहीं करता, और आप यह तो बतलावो कि आप उस भगवान्का क्या करते हैं ? आप भी तो उस भगवान् का कुछ नहीं करते हैं। आप कहते होंगे कि हम भगवान् को चाहते तो हैं। आप उस भगवान्को नहीं चाहते हैं, आप अपने ज्ञान और वैराग्यको चाहते हैं। सुन्दर पवित्र स्थितिमें आपके श्रद्धा और ज्ञानका परिणमन भगवान्के स्वरूपका विषय बनाकर हो रहा है और उसका आनन्द आप लूट रहे हैं। इस ही का नाम व्यवहार से, उपचारसे यह होता है कि आप भगवानको चाहते हैं।

कोई वस्तु हो, तीन प्रकारसे दृष्ट होता है (१) अर्थ, (२) शब्द और (३) ज्ञान। जैसे एक घड़ी है तो यह जो घड़ी है, यह पिंडरूप है तो कहलाती है अर्थ घड़ी, पदार्थ घड़ी और घ, ड़ी ऐसा लिखा हो तो यह शब्दघड़ी है और इस घड़ीका जो आकार आपके ज्ञानमें आयगा, समझमें आयेगा वह क्या है ? वह ज्ञानघड़ी है। तो आप अर्थघड़ीसे मिले हुए हो कि शब्दघड़ीसे मिले हो कि ज्ञानघड़ीसे मिले हुए हो ? आप ज्ञानघड़ीसे एकमेक हो। इसी प्रकार भगवान्का रूप तीन प्रकारसे है (१) अर्थ-भगवान् (२) शब्द-भगवान् और (३) ज्ञानभगवान्। अर्थभगवान् तो सिद्धालयमें हैं। उनको

तो आप नहीं पूजते। इतनी दूरपर हैं वे, सो उन्हें कैसे पूजा जाय? और भगवान् ये जो चार शब्द हैं इसमें शब्दभगवान्को भी हम नहीं पूजते किन्तु भगवान्का जैसा स्वरूप है वैसा जो आपका ज्ञान बना, यह क्या है? ज्ञान-भगवान् खुद। आप अपने ज्ञानभगवान्को ही पूजते हैं और आप किसी अन्य भगवानको नहीं पूजते हैं। यह आत्मा अपने स्वरूपरूप है, यह किसी गति रूप नहीं है।

ये मनुष्यादिक पर्यायें कर्म के उदयसे जनित हैं। किस कर्मके उदय से जनित हैं? जो रागादिक विभाव परिणामोंको उदित करे अर्थात् जिन का निमित्त पाकर जीव रागादिविभावरूप परिणमे। यह सब विभाव यह परमात्मतत्त्वकी भावनासे विपरीत है? परमात्मतत्त्व कैसा है कि शुद्ध ज्ञान दर्शनस्वभावी यह परमात्मतत्त्व है। जब उसकी भावनासे यह जीव रहित होता है अथवा भेदरत्नत्रय और अभेदरत्नत्रयकी भावनासे च्युत होता है तो यह बहिरात्मा अपने आत्मामें ऐसी बात लगा लेता है कि मैं मनुष्य हूं, नारकी हूं, तिर्यञ्च हूं, देव हूं। लेकिन अन्तरात्मा पुरुष, ज्ञानी पुरुष उन मनुष्यादिक विभाव पर्यायोंसे अपने को पृथक् जानता है। और भी बतलाते हैं कि ज्ञानी जीव निज और परके बारेमें कैसा निर्देशन करता है।

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि णवि ईसरु णवि णीसु।
तरुणउ बूढ़उ बालु णवि अण्णुविकम्मविसेसु ॥६१॥

आत्मा न तो पंडित है और न मूर्ख है, न यह ईश्वर है और न यह निर्धन है। न यह जवान है न बूढ़ा है, न बालक है, न और और प्रकारके कर्मोंकी विशेषता वाला है। यह तो जीवका स्वरूप ही नहीं है। तो जीव किस स्वभाव वाला है अथवा ये पंडित आदिक बातें किस स्वभावकी हैं? तो बतलाते हैं कि ये सब चीजें कर्मजनित हैं। विभाव पर्यायें हैं। यद्यपि पंडित आदिक सभी भाव व्यवहारनयसे जीवके स्वतत्त्व हैं। पंडित बने तो कौन? यह आत्मा। मूर्ख बने तो कौन? यह आत्मा। पंडित आदिक भावोंको शुद्ध निश्चयनयसे बताया जाय तो यह इस शुद्ध आत्मतत्त्वसे भिन्न हैं। अपने आपको केवल निरखो, मैं स्वयं अपने आपमें क्या हूं? मेरी ही शुद्धिके कारण मेरा मुझमें क्या ढंग है? दूसरे का तो कुछ भरोसा नहीं है ना? तो दूसरेकी क्या आशा करना?

भैया! खुद ही यह प्रभु तो अनन्त सुखका निधान है। मेरा सर्वस्व मंगलपूर्ण मनोरथ मुझमें ही है। मुझसे बाहर नहीं है। मैं किस परतत्त्वकी बात करूं? शुद्ध आत्मद्रव्यसे भिन्न सर्वप्रकारसे हेयभूत इन सब विभाव पर्यायोंको यह बहिरात्मा अपने आपमें लगाए फिरता है, मैं यह हूं, मैं यह हूं।

सुख, शांति अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिमें ही है। लाख उपाय आप करलो शांति नहीं प्राप्त हो सकती है। अपने आपके लक्ष्यको छोड़कर बाहरमें कहीं भी कुछ भी दृष्टि करके, यत्न करके शांति चाहो तो नहीं मिल सकती है। शांति जब मिलेगी जब अपने आपमें ही मिलेगी और अपने आपमें जैसा सहज मैं अपने आप स्वयं हूं उस तरहसे निरखो तो शांति मिलेगी। यद्यपि व्यवहारनयसे यहां जीवमें हैं रागादिक भाव, परन्तु वह हेयभूत हैं।

जिसे अपने रागरहित चैतन्यस्वभावका सम्वेदन न हो, ऐसा बहिरात्मा ही अपने आपमें उन पर्यायोंको जोड़ता है। अंतरात्मा उन विभावोंको प्रायः कर्मोंसे जोड़ता है। ये रागादि भाव परभाव हैं, इनमें मोह न करो। ये आए हैं, निकलने के लिए आए हैं, इन्हें निकल जाने दो। इन रागादिकोंको जकड़ कर पकड़ कर मत रह जावो। यह आत्मा तो शुद्धचैतन्य स्वरूप है। पंडिताई तो अधूरे ज्ञानविकासकी बात है। मूर्खपना अज्ञानकी बात है। धनी, समर्थ, ईश्वर होना यह पुण्यकर्मके उदयकी बात है। दरिद्र हो जाना यह पापकर्मके उदयकी बात है। जवान, बूढ़ा, बालक हो जाना, ये शरीरकी अवस्थाएँ हैं। हे आत्मन्! इस रूप तू नहीं है। अपने स्वरूपकेन्द्र से चिगकर इस परिणतिमें यदि आत्मीयताकी बुद्धि करेगा तो तू समझ कि संसारमें जन्ममरण और क्लेश ही भवितव्यमें निश्चित हैं। बड़े साहसका काम है कि सर्वपरवस्तुविषयक विकल्पजालको छोड़कर शुद्ध अभिन्न स्वभाव चैतन्यमात्र सहज जो निजतत्त्व है उसरूप मानकर स्थित हो जाय यह आत्मा कि लो मैं तो यह हूं।

व्यवहारमें जितने जीवोंका पालन होता है, पोषण होता है वह सब उनके कर्मोंके उदयके अनुसार होता है। किसी जीवका भार आपकी आत्मा पर नहीं है। सब जीव अपना भार संभाले हुए हैं। पर मोहमें यह कल्पना हो जाती है कि मैं ही तो इन सबको पालता हूं, मैं ही तो इनकी रक्षा करता हूं। सो इस अज्ञानभावसे यह जीव सबका बोझ लाद लेता है और परमार्थसे यह स्वभावसे बोझ लादे हुए नहीं है किन्तु अपने आपमें स्वयं होने वाले विकल्पोंका बोझ लदा हुआ है। यह आत्मा इन किन्हीं भी पर्यायरूप नहीं है, केवल एक प्रतिभासमात्र है। बहुत सूक्ष्म जो अपने को सूक्ष्मसे सूक्ष्म कह लेता है उसको अव्वल नम्बर मिलता है। जैसे जब बालक लोग खेलते हैं, गोली खेलते हैं तो शुरू शुरूमें बालक यह बोलते हैं कि मैं पानीसे पतला हूं, दूसरा बालक बोलता है कि मैं हवासे पतला हूं। उनका मतलब यह है कि जो अधिक पतलेपनकी बात अपनेको ला दे उसका अव्वल नम्बर आता है। जरा अपनेको अत्यन्त पतला, अत्यन्त सूक्ष्म समझ लो तो प्रथम नम्बर

होगा अर्थात् कल्याणमें अग्रणीय नम्बर होगा। तब यह समझमें आये कि यह मैं लो आकाशकी ही तरह अमूर्त हूं।

भैया! यह आत्मा चैतन्यस्वभावको लिए हुए है सो प्रतिभासात्मक केवल प्रतिभास हुआ, शेष तो ये सब सूक्ष्म हैं, अमूर्त हैं। उनका पिंड-निमित्त नहीं है, छिदने पिटने का निमित्त है, उसे कोई रोक सके ऐसा निमित्त नहीं। इस जीवको कोई रोके हुए नहीं है, शरीर रोके हुए नहीं है। यह जीव ही खुद शरीरको रख करके रुका रहता है। तो इसमें दूसरा क्या करे। ऐसा मैं अमूर्त केवल प्रतिभासस्वरूप आत्मा हूं। इस आत्मतत्त्वकी जिन ज्ञानियोंको श्रद्धा है वे बहुत-बहुत संकटोंके बीच भी अपने आपको सुरक्षित पा लेते हैं। उनके डर नहीं रहता है, डर उन्हें रहता है जिन्हें किसी प्रकारकी आशा लगी है। एक तो धन वैभवकी आशा और एक जीनेकी आशा, ये दो आशाएँ जिन्हें लगी हैं उनको डर है। और उनके लिए कर्म, कर्म हैं। पर जो आत्मासे ही अपना सम्बन्ध रखता है, न तो धन वैभवकी आशा करता है और न जीवनकी आशा करता है; उसके लिए कर्म, कर्म नहीं है। उसे किसी प्रकारका भय नहीं है। यह ऐसा आत्मा अपने सम्बन्धमें और क्या जानता है?

पुण्णु वि पापवि काल ण हु धम्माधम्मुवि काउ।
एक्कुवि अप्पा होइ णवि मेल्लिवि चेयण भाउ ॥६२॥

यह आत्मापुण्यरूप भी नहीं, पापरूप भी नहीं काल, आकाश, धर्म, अधर्म और शरीर इत्यादि रूप भी यह आत्मा नहीं। यह अपने चैतन्यस्वरूप को छोड़कर इन अन्य रूपोंमें नहीं जाता है। कितनी चीजोंको मना किया है। पुण्य, इसका भी सम्बन्ध आत्मासे कितना निकट है। एक तो पुण्य आत्माके निकट है और पुण्यके उदयसे उत्पन्न हुए जो भी विभाव हैं वे विभाव भी इस जीवके निकट हैं। किन्तु केवल जीवके स्वरूप को देखो तो जोवके दोनों भी पुण्य नहीं हैं। जैसे १० सेर पानीमें पाव भर मिट्टीका तेल डाल दो तो वह मिट्टीका तेल उस पानीमें खूब फैल जाता है। तब भी तेलमें पानी नहीं गया और पानीमें तेल नहीं गया। उन तेल और पानी दोनोंमें सम्मिश्रण नहीं हो पाता है। ये पुण्य कर्म भी उसी क्षेत्रमें हैं और यह जीव भी उसी क्षेत्रमें है फिर भी पुण्यका और जीवका परस्परमें सम्मिश्रण नहीं होता है। इसी प्रकार पाप कर्मकी बात है।

आकाश आदिक द्रव्य इन सब रूप भी यह आत्मा नहीं है। जिस जगह आत्मा है उस जगह समस्त द्रव्य हैं। लोकका कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहां छहों द्रव्य न हों। जीव भी वहीं मिलेगा, पुद्गलधर्म-अधर्म

आकाश काल भी वहीं मिलेगा। बाहर कुछ नहीं है। फिर भी यह जीव द्रव्य उनमें संकर नहीं होता है, मिलता नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें ही आकर अपना अस्तित्त्व लिए हुए हैं। यह जीव बाहरमें दृष्टि न डाले तो सुरक्षित ही है। समुद्रके अन्दर रहने वाले जलचर जीव सब सुरक्षित हैं। अपनी तरहसे ऊपर उठकर समुद्रके ऊपरी हिस्सा पर आते हैं या पानीसे ऊपर मुँह निकालते हैं तो उन्हें अन्य जीव उपद्रवित करते हैं। उन उपद्रवों से बचनेका एकमात्र सुगम उपाय यह है कि वह समुद्रमें डूब जायें।

यह आत्मा अपने ज्ञानसरोवरमें ही डूबा रहे, अपने उपयोगको अपने स्वरूपमें पाता रहे तो वहां एक भी संकट नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जीव अपनेको निर्भार अनुभव करता है। उसमें इतना साहस है कि वह कितना भी कमा ले पर सबको छोड़ने में उसे २-मिनटका भी विलम्ब नहीं होता। और न भी छोड़ सके तो वह अपनी श्रद्धामें जब भी ज्ञान संभाले तब समस्त पदार्थोंको अपने उपयोगसे वह तुरन्त छोड़ सकता है। ऐसा ज्ञानमें अद्भुद बल है जिस बलके प्रतापसे सारी स्थितियों में यह अपने आनन्दस्वरूपका अनुभव करता है। व्यवहारनयसे आत्मासे अभिन्न ये सब पुण्य पापकी बातें हैं, किन्तु शुद्ध निश्चयनयसे ये भिन्न हैं, हेयभूत हैं। पुण्य पाप, धर्म-अधर्म आदि भावोंको यह बहिरात्मा जो रागमें रंगा हुआ है, अपना मानता है और उन्हीं का यह अन्तरात्मा त्याग करता है। इनसे मैं रहित हूं, इस प्रकारकी भावना करके अपने शुद्ध आत्मद्रव्यमें अर्थात् केवल आत्माके स्वरूपमें अपना विश्वास किए हुए है कि यही मैं हूं। अपना ज्ञान और रमण किए हुए है ऐसा अभेद रत्नत्रयरूप स्वयं परम समाधिमें स्थित होता हुआ यह अन्तरआत्मा, कार्य समयसाररूप शुद्ध आत्मा हो जाता है।

भैया ! यह जो महाधिकार चल रहा है इसमें तीन प्रकारकी आत्मावों का वर्णन है। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ? जो शरीर और आत्माको एक समझता है वह बहिरात्मा है। जब शरीरको समझ लिया कि यह मैं हूं, तो इस रिश्तेके मूल पर सर्व जड़ पदार्थोंको भी समझता है कि यह मेरा है। जो देह को भी अपना न मानता हो वह परको कैसे समझ लेगा कि यह मेरा है ? देह मैं नहीं हूं, इसे अन्तरात्मा ही जानता है। अर्थात् आत्माको सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूपका जिन्हें अनुभव हुआ है और जानते हैं कि यह मैं एक हूं और उस एक के लिए ही सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। एकस्वरूप आत्मामें जिसका श्रद्धान है वह अन्तरात्मा कहलाता है। अन्तरात्मा होना एक ऐसा उपाय है, माध्यम है कि बहिरात्मापनका

त्याग स्वयं हो जाता है और परमात्मा बननेका उपाय चालू हो जाता है। सार किन्हीं भी बाह्य पदार्थों के झुकावमें नहीं है। किन पदार्थोंमें हम झुके ? कौन पदार्थ मेरे लिए शरण हैं। किस जीवका भरोसा रखा तो क्या वह पूरा पाड़ देगा ? वे अपने विषय-कषायोंके स्वार्थके साथी हैं। जैसा कि मैं भी स्वार्थी हूं। इसी प्रकार जगतके सब जीव स्वार्थी हैं।

दो मित्र थे, साथ-साथ स्वाध्याय करते थे। उन दोनों में यह तय हुआ कि जो भी पहिले मरे और मरकर देव बन जाय तो वह दूसरे को सम्बोधने के लिए अवश्य आए। उनमें एक मर गया, देव बन गया, तो उस मित्रको आया सम्बोधने, देखो हम देव हो गए हैं। हम तुम्हें सम्बोधने आए हैं। मोह न करो, आरम्भ परिग्रहसे दूर होओ, अपनी आत्मसाधनामें ही लगो तो वह कहता है कि वाह ! मेरे बड़े आज्ञाकारी पुत्र हैं, बड़ी विनयशील स्त्री है, माता पिता मुझे हृदयसे प्यार करते हैं, कैसे इनका छोड़ना होगा ? क्यों छोड़ा जाय ? तो वह देव बोलता है कि अच्छा कलके दिन १२ बजे तुम बीमार पड़ जाना, पेट दर्दका बहाना कर लेना—फिर हम सब बता देंगे। वह दूसरे दिन बीमार पड़ गया। सो यहां के वैद्य बुलाए गए, किसीसे ठीक न हुआ। वह देव भी वैद्यरूप रखकर सड़क पर डोलता हुआ यह कहता है कि मेरे पास अमुक-अमुक रोगकी पेटेन्ट दवाएँ हैं। उसे भी बुलाया। कहा हमारे भैया को अच्छा कर दो। कहा बहुत ठीक। यहां वहां कुछ देखकर बोला—एक कांचका गिलास लावो और उसमें स्वच्छ पानी लावो। कांचके गिलासमें स्वच्छ पानी आ गया। उसमें थोड़ी राख मिला कर कुछ मंत्रसा पढ़ दिया और मां से बोला कि तुम इस दवाको पी जावो। मां कहती है यह दवा तुम उस रोगीको क्यों नहीं पिलाते ? हमारे पी लेने से उसका रोग मिटेगा क्या ? तो वह देव बोला कि यह दवा तंत्र मंत्र सिद्ध है। इसको जो पी लेता है वह तो मर जाता है और रोगी बच जाता है। मां सोचती है कि मेरे तो चार लड़के हैं। यदि एक न रहा तो न सही। यदि मैं ही मर गई तो अभी जो तीन बच्चे हैं उनका सुख न देख सकूँगी। उसने मना कर दिया। पिता से दवा पीनेको कहा तो उसने भी यही कहा। स्त्रीसे कहा तो वह सोचती है कि मेरे तो ५ लड़के हैं। यदि यह पति मर गया तो इन ५ बच्चोंका सुख देखूँगी और यदि मैं ही मर गई तो मेरे लिए तो सब स्वाहा है। उसने भी मना कर दिया। तब वह वैद्य कहता है, तो क्या मैं दवा पी लूँ ? सब बोले हां, हां पीलो। घरके सभी लोग खुश हुए और बोले वैद्य जी आप तो दयाके निधान हो। वैद्य ने सबसे कहा जावो मैं पी लूँगा। जब चले गए, तब उसके कानमें फूंका। क्या कहते थे आप कि मेरी स्त्री

बड़ी विनयशील है, मां बाप बड़ा प्रेम करते हैं, बच्चे आज्ञाका पालन करते हैं? तब उसने कहा, हां हुआ ज्ञान।

तो कौन किसका क्या कर सकता है? सब अपने-अपने स्वार्थ विषय की वासनामें रहकर अपनी-अपनी चेष्टा करते हैं। यह अन्तरात्मा अपने अन्तरतत्त्वको जान रहा है और उस सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे मोक्षमार्गमें आगे बढ़ रहा है। मिथ्यादृष्टिकी और सम्यग्दृष्टिकी अन्तर्वृत्तिमें बड़ा अन्तर है। सम्यग्दृष्टि तो पिण्ड छुड़ाने के लिए भोग भोगता है और मिथ्यादृष्टि भोगों को चाह करके भोगता है। जैसे घरमें स्त्रियां चक्की पीसती हैं तो बड़े प्यारसे पीसती हैं, गा, गा करके पीसती हैं, और कोई स्त्री अगर जेल चली जाय तो वहां क्या वह प्यारसे पीसती है? नहीं। भैया! स्त्रियां भी तो जेल जाती हैं। क्या पुरुष ही जेल जाते हैं? स्त्री पुरुष सभी जेल जाते हैं। तो वहां चक्की पीसने को दे दिया जाय तो क्या प्यारसे पीसती हैं? नहीं। वहां तो भुगतना जानकर पीसेगी।

भैया! सम्यग्दृष्टिकी जेल में रहने वाले कैदी की जैसी हालत है। सम्यग्दृष्टि बुरी हालतमें भी फँसा रहे तो भी उसका ज्ञान जागृत रहता है। और मिथ्यादृष्टि जीव वासनासे विषयों को भोगता है, प्रीतिपूर्वक विषयोंको भोगता है। सम्यग्दृष्टि अपने अन्तर में अपना पोषण करते हुए संवर और निर्जरा करता जाता है और मिथ्यादृष्टि जीव अपनी पर्यायोंको लपेटता हुआ पर्यायबुद्धि करके अपने आपको कर्मबन्धसे लिप्त करता है। तो अन्तरात्मा ही ज्ञानभावनाके बलसे कर्मों को दूर करता है और यही शुद्ध दशा अंगीकार करके ज्ञानभावनामें रत होकर अपने को मुक्त कर लेता है। और वहां अनन्तकाल तकके लिए शाश्वत, स्वाधीन, सहज आत्मानन्दको भोगता है।

भैया! सम्यग्दृष्टिकी भावना शुद्ध भावना होती है। पंडित बनारसी दासने तो सम्यग्दृष्टिकी ऐसी उज्ज्वलताका वर्णन करके आत्मसमर्पण किया है, उन्हें जिनेश्वरका लघुनन्दन बताया है। वह ज्ञानी पुरुष न योगी है, न गृहस्थ है, न भोगी है, न त्यागी है, उसकी कलाको कौन समझे? कोई मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि की होड़ करके तप, व्रत, काय, क्लेश आदिमें बहुत ऊँचा बर्त करके चले तो क्या सम्यग्दृष्टि की होड़ हो सकती है? नहीं। तो यह ज्ञान ही हमें संकटोंसे दूर करता और परमात्मरसके निकट ले जाता है। इस कारण अन्तरात्मा बनकर बहिरात्मत्वको छोड़ो और परमात्मत्वको धारण करो।

यहां तक इस प्रथम महाधिकारमें बहिरात्मत्वके त्यागका कारणभूत व परमात्मत्वकी प्राप्तिका कारणभूत अन्तरात्मत्वको बताया गया है। इस अन्तिम दोहेमें मिथ्यादृष्टि की भावनासे विपरीत सम्यग्दृष्टिके विचारको कहा है और इस बोधके साथ यह प्रथम महाधिकार समाप्त होता है। इसके बाद इसी का विशेष विवरणरूप कथन अब आगे चलेगा।

॥ परमात्मप्रकाश प्रवचन तृतीय भाग समाप्त ॥

मुद्रक:—खेमचन्द जैन, शास्त्रमाला प्रिंटिंग प्रेस, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।